एक दिव्य पुरुष की भव्य कथा

गणधर गौतम स्वामी

मुनि मनितप्रभसागर

जहाज मंदिर प्रकाशन - 172

गणधर गौतम स्वामी

(समर्पण के शिखर की हृदयस्पर्शी कथा)

आज्ञा-आशीः

पू. गुरूदेव गच्छाधिपति

आचार्य श्री जिनमणिप्रभसूरीश्वरजी म.सा.

लेखन : मुनि मनितप्रभसागर

संपादन : विदुषी साध्वी डॉ. नीलांजनाश्रीजी म.

मूल्य : 80 रुपये

प्रतियाँ : 2000 (2015) 500 (2020)

प्रकाशन वर्ष : ईसवी सन् 2020

प्रकाशक एवं प्राप्ति स्थल

श्री जिनकान्तिसागरसूरि स्मारक ट्रस्ट

जहाज मंदिर, माण्डवला-343042 जिला जालोर (राजस्थान)

फोन नं. : 09649640451 / 02973-256107

प्राप्ति स्थल : कुशल वाटिका, बाड़मेर (राज.)

फोन : 9351668064 / 8107841587

श्री जिनहरि विहार, तलेटी रोड, पालीताना-364270

जिला : भावनगर (गुजरात) फोन : 9351668064 /8107841587

०

शब्द-शिल्प एवं आवरण

राकेश पाण्डेय (9953536309 / 9818460232)

समर्पण

जिनके रोम-रोम में महावीर का ध्यान था...
जिनके कण-कण में शासन का सम्मान था...
जिनके अणु-अणु में नम्रता का निधान था...
आत्म साधना के पवित्र पुंज
अनन्त लब्धि भण्डार
मेरी श्रद्धा के हर परमाणु में
बसे-जुड़े-घुले-मिले
महापुरुष-संघपुरुष-धर्मपुरुष

गणधर

गुरु गौतम स्वामी

को
सादर समर्पित

मुनि मनितप्रभसागर

अर्थ सौजन्य

श्रावक वो ही कहलाए,
जो करे नित,
जिनमंदिर-दर्शन
वीतराग-पूजन
सद्गुरु-वंदन
सामायिक-आराधन

इन्हीं विधियों से अलंकृत, विपुल साहित्य सर्जक
मुनि श्री मनितप्रभसागर जी म.सा. द्वारा संयोजित

सुप्रभातम्

के विमोचन द्रव्य से

श्रीमती चंपादेवी

मावजी टोमाजी घोडा परिवार

हाडेचा

तुष्टि

गणधर गौतम स्वामी आदर्श हैं। विशिष्ट आयामों व गुणों से परिपूर्ण उनका व्यक्तित्व प्रगति का पथ-प्रदर्शक है।

परमात्मा के राग में उनकी गोद में आलोटते गौतम स्वामी!

ज्ञान होने पर भी परमात्मा से समाधान प्राप्त करते गौतम स्वामी!

छोटे-छोटे बालकों को भी संयम की शिक्षा देने में परम कुशल गौतम स्वामी!

समस्त साधुओं को विनय का आदर्श सिखाने वाले गौतम स्वामी!

दीक्षा देकर केवलज्ञान प्रदान कराने वाले गौतम स्वामी!

एक पात्र परमान्न से पंद्रह सौ तीन तापसों को पारणा कराते लब्धि निधान गौतम स्वामी!

परमात्मा के चरणों की ही एकमात्र चाह रखने वाले परम विनीत गौतम स्वामी!

परमात्मा के विरह में बच्चों की भांति बिलखते गौतम स्वामी!

गुरू गौतम स्वामी के दिव्य व्यक्तित्व के ये विविध आयाम हैं।

उनके जीवन में प्रेरक तत्त्वों की प्रचुरता है। वे अपने जीवन से जितना प्राप्त करते हैं, उससे अधिक अर्पण करते हैं। वे अपने आचरण से विनय, भक्ति, गांभीर्य, व्यवहार; सब कुछ सिखाते हैं। कलकल प्रवाहित झरणे की भांति मंद-मंद बहता उनका जीवन माधुर्य-रस से परिपूर्ण है।

प्रिय **मनितप्रभ** ने गौतम स्वामी के जीवन का आलेखन कर अपनी श्रद्धा समर्पित की है। लगातार विहार व कार्यक्रमों की बहुलता होने पर भी समाधिपूर्ण एकाग्रता व अनुशीलन-परिशीलन से पूर्ण, प्रखर प्रतिभा के आधार पर बहुत कम समय में गुरू गौतम स्वामी के जीवन के विविध आयामों, प्रसंगों का वर्णन कर एक इतिहास की रचना की है।

मुनि मनितप्रभ ने संयम-ग्रहण के बाद हर क्षेत्र में प्रगति भरी ऊँचाइयाँ प्राप्त की हैं। चारित्र पालन, ज्ञान साधना, प्रवचन क्षमता, लेखन प्रतिभा, काव्य-सर्जन आदि हर क्षेत्र को आत्मसात् किया है। उसकी प्रगति में मेरा आत्म-तोष निहित है।

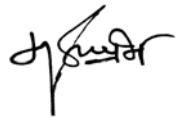

कन्याकुमारी
1 मार्च, 2015

[आचार्य जिनमणिप्रभसूरि]

श्रद्धामृतम्

जिनशासन के शब्दकोश का सबसे प्रिय, मंगलमय, अमृतमय शब्द है 'गौतम'। परमात्मा महावीर के श्रीमुख से बार-बार उच्चरित होने वाला शब्द है 'गौतम'। विनय और समर्पण की जीवन्त प्रतिमा का नाम है 'गौतम'। अनन्त शक्तियों, सिद्धियों और लब्धियों का आश्रय स्थान है 'गौतम'। शिष्यत्व की परम पराकाष्ठा का नाम है 'गौतम'।

संसार की समस्त उत्तम, अनुपम, श्रेष्ठतम, उत्कृष्टतम उपमाओं से अलंकृत कर दें, फिर भी जिनके व्यक्तित्व को शब्दों की परिधि में नहीं बांधा जा सकता, ऐसे अनंत गुणों के भंडार, महामुनीश्वर गणधर भगवंत गुरू गौतम स्वामी का नाम जैसे ही कर्णपटल से टकराता है, हृदय अपार अहोभाव और अलौकिक श्रद्धा से परिपूर्ण होकर उनके श्री चरणों में नतमस्तक हो जाता है।

जिनका नाम ही अपने आप में मंत्र-स्वरूप है, जिनका स्मरण ही महामंगल की रचना करता है, ऐसे भगवान गौतम स्वामी मेरी अनन्य श्रद्धा के केन्द्र हैं। उनके आदर्श जीवन-चरित्र को जब भी पढ़ने-सुनने-समझने का अवसर आता है, मेरे रोम-रोम में आस्था

के अमृत का संचार हो जाता है। हृदय का अणु-अणु जहाँ उनके विनय, समर्पण और गुरूभक्ति पर न्यौछावर हो जाता है, वहीं आँखें श्रद्धा भरे अश्रु-बिंदुओं से उस अमृत-पुरूष का अभिषेक करती हुई मेरे आत्म कालुष्य को भी यत्किंचित् धो जाती हैं।

प्रकर्ष पुण्य के स्वामी गुरू गौतम का समूचा जीवन जितना आश्चर्यकारी है, उतना ही आह्लादकारी भी। कहाँ दिग्गज, वादिवेताल, विद्वद्वरेण्य पंडित इन्द्रभूति का आसमान छूता अहंकार और कहाँ चार ज्ञान के धारक, गुर्वाज्ञा के परम आराधक, सर्वात्मना समर्पित, परम विनीत, निश्छल, निर्मल, पचास हजार केवलज्ञानी शिष्यों के स्वामी गुरू गौतम का अनुत्तर, अप्रतिम विनय भाव!

वय में इन्द्रभूति गौतम यद्यपि परमात्मा महावीर से आठ वर्ष बड़े थे, परंतु भावों की अपेक्षा से वे सदैव अबोध बालक की भांति परमात्मा के चरणों की उपासना करते थे। विशाल शिष्य संपदा होने पर भी न उन्होंने कभी स्वतंत्र निर्णय लिया, न कभी स्वतंत्र विचरण किया। प्रभु जो भी आज्ञा देते, बिना किसी प्रश्न के तत्काल उनके कदम अनुपालना की मुद्रा में तत्पर हो जाते। कार्यसिद्धि होते ही दौड़े-दौड़े पुनः प्रभु की छाँव में पहुंच जाते।

शास्त्रकार कहते हैं कि अनन्त गुण निधान गुरू गौतम के जीवन में दो ही रूप मुख्यतया दिखाई देते हैं- 1. सतत प्रभु आज्ञा का अनुपालन, और 2. प्रभु के चरणों का अनुगमन। प्रभु के प्रति अप्रतिम प्रेम, अनन्य राग, अखंड भक्ति, अविरल श्रद्धा के परिणाम स्वरूप गौतम स्वामी में अनन्त लब्धियाँ अपने आप प्रकट हो गयीं। परंतु उसका उन्हें न लेश मात्र भी अभिमान था, न कोई आकर्षण। अक्षीण महानसी लब्धि के अतिरिक्त उन्होंने अपने जीवन में किसी

भी लब्धि का न कभी प्रयोग किया, न प्रदर्शन।

यह सर्वविदित तथ्य और सत्य है कि गौतम स्वामी के नाम स्मरण में इतनी अनंत रिद्धि-सिद्धि-समृद्धियों का भंडार समाहित है, जिनकी तुलना में कल्पवृक्ष, कामधेनु, कामकुंभ तथा चिंतामणि रत्न भी तुच्छ व निरर्थक प्रतीत होते हैं। परमात्मा के निर्वाण पर्यंत वे कैवल्य ज्योति से परिपूर्ण नहीं बने, परंतु जिसके मस्तक पर उन्होंने अपना अनुग्रह भरा वरदहस्त रख दिया, वह केवली बन गया। जिसको भी उन्होंने संबोध दिया, वह प्रतिबुद्ध होकर उनके श्री चरणों में समर्पित हो गया।

नववर्ष का मंगल प्रभात जिनके नामस्मरण के साथ अवतरित होता है, ऐसे महामंगलकारी, भव्य-दिव्य-महिमामंडित आदर्श व्यक्तित्व के स्वामी गणधर गौतम भगवान की जीवन गाथा पर अनेक महापुरूषों ने अपनी कलम चलाई है। इसी कड़ी में मेरे प्रिय अनुज मुनि **मनितप्रभसागरजी** म. ने भी अपने सघन श्रद्धा केंद्र गुरू गौतम के जीवन को शब्दों के सांचे में ढालने का अनुमोदनीय पुरूषार्थ साधा है।

मुनि श्री लेखन कला में परम प्रवीण और पारंगत हैं। उनके पास शब्दों का सौंदर्य है और भावों का माधुर्य भी है। यद्यपि गुरू गौतम स्वामी का जीवन प्रभु भक्ति की मधुरता से इतना ज्यादा ओतप्रोत है कि जहाँ से भी चखें, मिठास ही मिठास भरता है। तथापि, मुनि श्री की भावप्रवण, मँजी हुई लेखनी का स्पर्श पाकर पुण्यपुंज महापुरूष की यह अनूठी जीवन-यात्रा अत्यधिक मंत्रमुग्ध, रोमांचित, भाव-विभोर करने वाली, समस्त अर्हताओं से परिपूर्ण गुरू गौतम स्वामी की लघुता का दिग्दर्शन कराने वाली साहित्य जगत् की

अनमोल कृति सिद्ध होगी, ऐसा मेरा विश्वास है।

प्रज्ञाशील, स्वाध्याय प्रेमी आत्मीय अनुज मुनिवर श्री प्रतिपल श्रुतभक्ति, श्रुतसेवा के द्वारा जहाँ जिनवाणी के नवनीत का रसास्वादन कर रहे हैं, वहीं साहित्य सर्जन की मुक्ता माला में नित नये मोती पिरोते हुए साहित्य जगत् को भी समृद्ध कर रहे हैं। तदर्थ उन्हें अनेकशः बधाई ..... हार्दिक अभिनंदना।

जिनके नाम मंत्र के उच्चारण मात्र से शोक-संताप नष्ट हो जाते हैं, नव-निधान प्रकट हो जाते हैं, ऐसे जिनशासन व प्रभु महावीर के लाडले रत्न गुरू गौतम स्वामी का जीवन अपने आप में अनुपमेय है। सहस्त्रों-सहस्त्रों जिह्वाओं से देव-देवेन्द्र, बुध-बृहस्पति आदि गुणगान करें, तब भी उनके गुणों का पार नहीं पाया जा सकता। ऐसे अनन्त गुणरत्न महोदधि गौतम स्वामी भगवंत का अनुकरणीय जीवन हमारे हृदय में भी प्रभु आज्ञापालन की निष्ठा का संचार करे। हमारी परमात्मा में प्रीति व भक्ति बढ़े, जिससे हम मुक्तिपुरी के साम्राज्य में प्रवेश करके गौतम स्वामी की ज्योति में निज-ज्योति को विलीन कर सकें, इसी में प्रस्तुत सर्जन की सफलता और काम्यता है।

-विद्युत् चरण रज

साध्वी नीलांजना

(साध्वी डॉ. नीलांजनाश्री)

मंगलं गौतम प्रभुः

जैन वाङ्मय में गुरु गौतम स्वामी का अत्यन्त सम्मानित स्थान है।

गौतम स्वामी सम्पूर्ण जैन जगत् के अमृत पुरुष! जिनके अंगूठे में अमृत तो वाणी में अमर पद का दान! ऐसे दिव्य पुरुष का नाम बोलते ही शब्द-शब्द श्रद्धा की सुवास से भर जाता है, और ध्यान धरते ही अणु-अणु पवित्रता की आभा से छलक उठता है।

गौरव पुरूष गौतम गणधर ही नहीं, भारतभूमि के गौरव पुरुष भी थे। उनके रोम-रोम में परमात्मा महावीर के प्रति प्रीति, माधुर्य और समर्पण का झरणा बहता था। वे शिष्य थे तो निःस्वार्थ समर्पित चेतना भी थे।

यद्यपि गौतम स्वामी पचास हजार शिष्यों के स्वामी थे, पर हृदय में तो एकमात्र परमात्मा महावीर ही प्रतिष्ठित थे।

उनके एकनिष्ठ व्यक्तित्व और कर्तृत्व पर गौर करते हैं तो हम पाते हैं कि जैनेतर इतिहास में जो यश भक्त चेतना हनुमान को प्राप्त है, उससे भी अधिक सुयश जैन इतिहास के पन्नों पर गणधर इन्द्रभूति गौतम को प्राप्त है।

❑ लब्धि निधान गौतम

'गौतम' नाम मात्र तीन अक्षरों का संयोजन नहीं, अपितु ऋद्धि-सिद्धि और शक्ति का अखूट भण्डार है। 'गौ + त + म', ये तीनों ही अक्षर अत्यन्त प्राणवान और सार्थक! इसकी सुनहरी झलक गौतम स्वामी के रास में बिम्बित होती है-

चिन्तामणि कर चढियो आज,
सुरतरु सारे वंछित काज,
काम कुम्भ सहु वश हुआ ए।
कामगवी पूरे मन कामिय,
अष्ट महासिद्धि आवे धामिय,
सामिय गोयम अणुसरो ए॥

'गौ' अक्षर कामधेनु का प्रतीक है तो **'त'** अक्षर कल्पतरू का वाचक है तथा **'म'** अक्षर चिंतामणि को दर्शाता है।

आज भी यह अनुभवजन्य तथ्य है कि जो 'गौतम' का जप, तप, साधना और उपासना करता है, श्रद्धा के दीप जलाता है, वह जीवन में परम ऐश्वर्य, परम धैर्य, परम गांभीर्य और परम औदार्य को प्राप्त करता है।

इन्द्रभूति गौतम कामधेनु के समान सर्ववांछित पूरक थे, पर उनकी निर्लिप्तता कितनी अप्रतिम कि रक्त के कतरे में भी यश, मान और नाम की आकांक्षा नहीं।

इन्द्रभूति गौतम चिंतामणि के समान अचिन्त्य फलदाता थे, पर उनकी निर्मलता कितनी दिव्य कि उन्हें संसार की चिन्ता में नहीं, स्वयं के चिंतन में रस था।

इन्द्रभूति गौतम कल्पतरू के समान इच्छितार्थ दानी थे, पर

वे संसार के सुखों का दान न कर के केवलज्ञान का दान करते थे।

पारसमणि के समान इन्द्रभूति गौतम का पावन संस्पर्श पाकर पतित और पापी आत्माएँ भी परमात्मा बन गयी।

उनके नाम से क्या नहीं होता?

'गौतम' नाम ही सर्वसंकट को दूर करने वाला, सर्वत्र मंगल करने वाला और समस्त पापों का विनाश करने वाला जयकारी महामंत्र है।

जब भी 'गौतम स्वामी' का नाम स्मरण में आता है, तब एक समुज्ज्वल साधक, अलौकिक आराधक और उत्कृष्ट उपासक की छवि आँखों के सामने छा जाती है।

❑ पावन साधक गौतम

गंगा से भी पवित्र, हिमालय से भी उत्तुंग, आकाश से भी विस्तृत और सागर से भी गंभीर ऐसे गौतम स्वामी का नाम अष्ट-सिद्धि, नव-निधि, अट्ठाइस लब्धि और चौदह विद्याओं का आवास है। किसी को ध्यावें तो सरस्वती और लक्ष्मी, दोनों स्वयमेव प्रसन्न हो जावें, ऐसी परम शक्ति और भक्ति 'गौतम' नाम के अतिरिक्त किसमें हो सकती है!

गौतम स्वामी ज्ञान से समृद्ध पर कितने विनम्र! लब्धि के अक्षय कोष, पर कितने निरभिमानी! गणधर पद से अलंकृत, पर कितने निर्विकार! यदि उनका विचरण, आचरण और संस्मरण समझ में आ जाये तो जीवन ही बदल जाये।

उनका पावन जीवन जितना मुग्ध करता है, उतनी ही प्रेरणा भी देता है। आनंद श्रावक से क्षमा मांगने उलटे पाँवों तुरन्त लौटना उनकी समर्पित, नम्र और सरल आत्मा का परिचायक तत्त्व है तो

केशीकुमार श्रमण के प्रश्नों की सरस उत्तरावली उनकी श्रुत सम्पन्न चेतना का बोध देती है। पेढाल पुत्र उदक को तत्त्व का विज्ञान सिखाना उनकी सुतर्क सम्पन्न बौद्धिक क्षमता को उजागर करता है। 92 वर्ष की उम्र में निर्दोष बाल की तरह विलाप करना उनकी भक्त चेतना की असीम भक्ति को प्रकट करता है।

परमात्मा महावीर के सान्निध्य में जमाली भी आया और गौतम स्वामी भी आये।

इन्द्रभूति गौतम गर्वोन्नत शैल बनकर आये पर झील की तरह झुके तो ऐसे झुके कि ज्ञान-दर्शन-चारित्र के अमृत से आकंठ आपूरित हो गये।

जमाली समर्पित होकर आया, पर अहंकार के कारण शुष्क बना रहा।

गौतम स्वामी लब्धि के ही नहीं, गुणों के भी निधान थे। प्रतिबोध कुशल, मनस्वी और यशस्वी होने पर भी उनकी विनय सम्पन्नता इतनी अनूठी थी कि जिसके कारण 700 केवलज्ञानियों के स्वामी परमात्मा महावीर के शिष्य गौतम स्वामी 50000 केवलज्ञानी शिष्यों के स्वामी बने।

उनके संस्पर्श से रोग पलायन कर जाते, प्रस्वेद की खुश्बू से प्रसन्नता का संचार होता! वे जहाँ विराजते, वहाँ का वायुमण्डल सुस्वच्छ हो जाता। जिन पर उनकी अमीदृष्टि पड़ जाती, वह निहाल-मालामाल हो जाता। इतना ही नहीं, वे जिसके सिर पर अपना वात्सल्य भरा वरदहस्त रख देते, उसका कल्याण सुनिश्चित हो जाता।

दुःखियों के मित्र, अशरण की शरण, विघ्नों के निवारक ऐसे महापुरुष गौतम स्वामी की शरण में आकर ऐसा लगता, जैसे

भूखे को भोजन, प्यासे को पानी, राही को मंजिल, संतप्त को शांति, तपते को छाया तथा रोगी को दवा मिली हो।

उनकी शरण और चरण तो क्या, स्मरण भी सकल कुशल मंगल का शिवधाम है। लब्धियाँ उनके चरण का स्पर्श पाकर स्वयं को गौरवान्वित महसूस करतीं, पर उनके मन में उसका न तो अभिमान था, न कोई विशेष मूल्य।

योग साधना का महाबल होने पर भी प्राप्त प्रमाणों के आधार पर मात्र दो बार ही लब्धि का प्रयोग किया। एक अष्टापद की यात्रा में, दूसरा पन्द्रह सौ तीन तापसों के पारणे में।

❑ अभिनन्दनीय गौतम

गणधर गौतम स्वामी योग साधना, आत्म साधना और मोक्ष साधना के अप्रतिम तथा अनुत्तर आयाम थे। उनके प्रशस्त गुणों की अभिनंदना में केशी कुमार श्रमण जैसे मेधावी आचार्य उन्हें **'संशयातीत सर्वश्रुतमहोदधि'** से अलंकृत करते हैं तो शास्त्रकार **'क्षमाश्रमण महामुनि गौतम'** तथा **'सिद्ध-बुद्ध अक्षीण महानस भगवान् गौतम'** कहकर संबोधित करते हैं। श्री विनयप्रभोपाध्याय **'ॐ ह्रीं श्रीं अर्हं गौतम स्वामिने नमः'** मंत्र-जाप का विधान करते हुए कहते हैं कि यह सकल मंगल वांछित दायक मंत्र है। इसका नियमित निष्ठापूर्वक जाप करने वाला संसाधनों और सुविधाओं को ही नहीं पाता, अपितु साधना और संयम भावना का भी विकास करता है।

यह भी गुरु गौतम की महिमा का ही उद्घोष है कि जैन समाज में आज भी लक्ष्मी पूजन के पश्चात् नये बही खातों में प्रथम पृष्ठ पर 'श्री गौतम स्वामी जी महाराज की लब्धि हो जो' कहकर नाम-प्रभाव के साथ हार्दिक सफलता की कामना को व्यक्त किया

जाता है। सचमुच ही 'गौतम' का नाम, जाप, शरण, स्मरण और दर्शन, सब कुछ रोम-रोम में एक नये उल्लास और आनंद का संचार करता है। इसी कारण प्रभातकालीन प्रार्थना में लाखों श्रद्धालु अपनी भक्ति भावना को इस प्रकार उजागर करते हैं-

अंगूठे अमृत बसे, लब्धि तणा भण्डार।
श्री गुरु गौतम समरिये, वांछित फलदातार॥

'गौतम' नाम की महिमा ने अनेक तपों को भी जन्म दिया है जैसे वीर गणधर तप, गौतम कमल तप, गौतम खीर एकासना, निर्वाण दीपक तप आदि।

गौतम स्वामी की मूर्ति और चरणों का निर्माण वर्तमान की ही नहीं अपितु कई शताब्दी पूर्व की देन है। हजारों धातु व पाषाण की प्रतिमाएँ एवं चरण नगर-नगर में पूजे जा रहे हैं। गणधर प्रवर की प्राचीनतम चमत्कारी प्रतिमा भीलडी (भीमपल्ली) तीर्थ में खरतरगच्छीय आचार्य श्री जिनेश्वरसूरि (द्वितीय) के शिष्य आचार्य श्री जिनप्रबोधसूरि द्वारा वि.सं.1334, वैशाख वदि पंचमी के पावन दिवस प्रतिष्ठित है। वर्तमान में प्रतिष्ठित हो रही हजारों प्रतिमाएँ जन-मन की अगाध श्रद्धा का ही परिणाम हैं।

❑ गौतम पर लेखन

गौतम स्वामी के गौरवपूर्ण जीवन पर अद्यावधि पर्यन्त संस्कृत-प्राकृत-अपभ्रंश, हिन्दी-गुजराती भाषा में छन्द, ग्रन्थ, स्तवन, अष्टक, रास, स्तुति, पद्य, निबन्ध, सज्झाय, गीत, ढाल आदि शताधिक रचनाएँ लिखी जा चुकी हैं। इनमें से कुछ प्रकाशित हैं तथा कुछ अप्रकाशित हैं। उन पर कलम चलाकर भक्तों ने निज आस्था को शब्दों का आकार दिया है।

गुरु गौतम स्वामी के अलौकिक-आलोकित आचरण के अनुरूप उनका सम्पूर्ण जीवन-वृत्त तो उपलब्ध नहीं होता, तथापि आगमों तथा ग्रन्थों में उनके भव्य जीवन की जो झलक मिलती है, वह उनकी महिमा और गरिमा को प्रकट करने में पूर्ण समर्थ है; बशर्ते हम अपनी आँखों में श्रद्धा का अंजन आंजकर पढ़े।

हरिभद्रसूरि ने 'उपदेश पद वृत्ति' में, शीलांकाचार्य ने 'चउपन्न महापुरिस चरियं' में, खरतरगच्छालंकार अभयदेवसूरि ने 'भगवती वृत्ति' में, हेमचन्द्राचार्य ने 'त्रिषष्टिशलाका पुरुष' में गौतम स्वामी के पवित्र चरित्र का आलेखन किया है।

प्राकृत भाषा में 'गौतम' नामांकित दो ग्रन्थ प्राप्त हैं- गौतम कुलक एवं गौतम पृच्छा। दोनों पर टीकाएँ, बालावबोध आदि प्राप्त होते हैं। गौतम पृच्छा पर खरतरगच्छीय जिनहर्षसूरि के प्रशिष्य वाचक मतिवर्धन गणि ने बहुत सुंदर टीका लिखी है।

संस्कृत महाकाव्य के रूप में गुरु गौतम संबद्ध 'गौतमीय महाकाव्य' नामक एक मौलिक रचना है, जिसके प्रणेता खरतरगच्छीय उपाध्याय रामविजय जी (प्रसिद्ध नाम रूपचन्द्रजी म.सा.) हैं। इस महत्वपूर्ण कृति पर खरतरगच्छालंकार मनीषी प्रवर श्री क्षमाकल्याणोपाध्याय ने प्रौढ़ टीका का आलेखन किया है।

गौतम स्वामी की विशिष्टताओं पर अनेक स्तोत्र उपलब्ध हैं, उनमें से सर्वाधिक प्राचीन स्तोत्र दशपूर्वधर वज्रस्वामी कृत माना जाता है। श्री जिनप्रभसूरि के तीन स्तोत्र, मुनिसुन्दरसूरि, देवानंदसूरि, धर्महंस आदि कृत स्तोत्र इन्द्रभूति गौतम के गुणों का गान करते हुए नजर आते हैं। भण्डार में प्राप्त तीन अष्टकों में से **'स गौतमो यच्छतु वाञ्छितं मे'** विशेष प्रसिद्धि को संप्राप्त है। पूज्य गुरूदेव आचार्य श्री

जिनमणिप्रभसूरिजी म.सा. ने गुरु गौतम स्वामी इकतीसे की भावपूर्ण रचना की है।

❑ एक जघन्य अपराध

सम्पूर्ण साहित्य भण्डार का अवलोकन करते हैं तो पाते हैं कि श्री गौतम स्वामी पर सर्वाधिक प्रभावशाली, सुप्रसिद्ध रचना **'गौतम स्वामी का रास'** है, जो जन-जन की श्रद्धा का केंद्र बना हुआ है। यह साहित्य कोश की अनुप्राश एवं अलंकरण से परिपूर्ण एक चमत्कारिक गेय कृति है। इसकी रचना विक्रम संवत् 1412 में खरतरगच्छ मुकुट मणि दादा श्री जिनकुशलसूरि के कृपा पात्र शिष्य विद्वद्वर्य श्री विनयप्रभोपाध्याय ने अपने भ्राता की निर्धनता के निवारणार्थ की थी। कार्तिक शुक्ला प्रतिपदा को विरचित यह रास हर नववर्ष कार्तिक शुक्ला प्रतिपदा को समस्त गच्छों में मांगलिक के रूप में श्रवण किया जाता है, इतना ही नहीं, हजारों श्रद्धालुओं को यह रास कंठस्थ है तथा वे प्रतिदिन प्रातः श्रद्धा से इस रास का संगान किया करते हैं।

इस सरस रास के कर्ता के रूप में परवर्ती लेखकों, संपादकों तथा प्रकाशकों ने विजयभद्र या उदयवन्त लिखकर भ्रामकता पैदा की है जबकि रास की 43वीं गाथा में स्पष्ट रूप से **'विनयपह उवज्झाय थुणीजे'** रासकर्ता विनयप्रभोपाध्याय का उल्लेख है।

❑ कृतज्ञता का कर्त्तव्य

मेरी लेखन प्रक्रिया की कड़ी में यह विचार उद्‌भूत हुआ कि गुरु गौतम स्वामी पर एक सुन्दर-सजीव-सरस ग्रन्थ लिखा जाय, इसका कारण भी था कि गणधर गुरू गौतम स्वामी मेरी हार्दिक श्रद्धा के केन्द्र हैं।

मैं यह भी जानता था कि इन्द्रभूति गौतम नामक अप्रमत्त साधक और अमृत पुरुष पर कलम चलाना असंभव नहीं पर दुरूह एवं गुरुतर कार्य है।

एक तेजस्वी पुरुष की सौम्य कथा!

एक मनस्वी पुरुष की समर्पण कथा!

क्षमा, नम्रता और पवित्रता में जीने वाले साधक पुरुष पर लिखना इतना सहज नहीं था। उनके जीवन से संबंधित सामग्री का भी अभाव था। पर इसे गुरु गौतम भगवंत की कृपा का बल ही समझें कि उनका जीवन पाथेय भी प्राप्त हो गया। जो पुस्तक 50-60 पृष्ठों में सिमटने वाली लग रही थी, वह 200 पृष्ठ तक पहुँच गयी। नये विचार, नये चिंतन, नये शब्द और नया प्रवाह सहज ही मेरे श्रद्धा के धरातल पर जन्म ले रहा था, मेरे मन की श्रद्धा और पवित्रता बढ़ती जा रही थी, निश्चित ही यह सब अमृत पुरुष की अमीदृष्टि का परिणाम था। **'तेरा तुझको अर्पण'** कहते हुए मेरा मन श्रद्धा से अभिभूत है।

मुझे मेरे प्रगुरुदेव पू. आचार्य देव **श्री जिनकान्तिसागर-सूरीश्वरजी म.सा.** की अदृश्य कृपा प्राप्त है तो प्रत्यक्ष गुरुदेव पू. आचार्य प्रवर **श्री जिनमणिप्रभसूरिजी म.सा.** की कृपा दृष्टि के बिना कोई भी काम सहज नहीं होता। उनके प्रति मेरी हार्दिक वंदनावलि प्रस्तुत है।

धी सम्पन्ना अग्रजा साध्वी **डॉ. नीलांजनाश्रीजी म.** ने आवश्यक संशोधन कर कृति को विशिष्ट आकृति दी है, उनका यह अपनापन धन्यवाद का नहीं, धन्योऽहम् का विषय है।

श्री राकेशजी पाण्डेय (दिल्ली) का हार्दिक सहयोग भी

स्वीकरणीय है। लेखन में सहयोगी पाथेय के प्रति भी मैं हार्दिक कृतज्ञ हूँ।

निश्चित ही इन्द्रभूति गौतम से गौतम स्वामी की जीवंत कथा विनम्रता, सरलता, गुणानुराग, क्षमापना, उदारता, जैसे हजारों गुण-पुष्पों का पराग अपने में समेट कर सुवासित-सुंदर गुलदस्ता बन गयी है।

महापुरुष की महायात्रा हमें महापंथ का वरदान प्रदान करे। महानिर्वाण की अमर ज्योति प्राप्त कर हम परमात्मा की ज्योति में मिल जायें।

अज्ञानतावश लेखन में त्रुटि हो तो सुझाव सादर आमंत्रित हैं।

मणि चरण रज

[मुनि मनितप्रभसागर]

मुखपृष्ठ चित्र परिचय :
भीलडी (भीमपल्ली) तीर्थ में खरतरगच्छीय आचार्य श्री जिनेश्वरसूरि (द्वितीय) के शिष्य आचार्य श्री जिनप्रबोधसूरि द्वारा वि.सं. 1334 में प्रतिष्ठित प्राचीनतम चमत्कारी प्रतिमा।

श्री गौतमाष्टकम्

श्री इन्द्रभूतिं वसुभूतिपुत्रं, पृथ्वीभवं गौतम - गोत्ररत्नं।
स्तुवंति देवाः सुरमानवेन्द्राः, स गौतमो यच्छतु वांछितं मे॥१॥
श्री वर्धमानात्त्रिपदी-मवाप्य, मुहूर्त्तमात्रेण कृतानि येन।
अंगानि पूर्वाणि चतुर्दशापि, स गौतमो यच्छतु वांछितं मे॥२॥
श्री वीरनाथेन पुरा प्रणीतं, मंत्रं महानंदसुखाय यस्य।
ध्यायं-त्यमी सूरिवराः समग्राः, स गौतमो यच्छतु वांछितं मे॥३॥
यस्या-भिधानं मुनयोऽपि सर्वे, गृह्णंति भिक्षाभ्रमणस्य काले।
मिष्टान्न-पानांबर-पूर्ण-कामाः, स गौतमो यच्छतु वांछितं मे॥४॥
अष्टापदाद्रौ गगने स्व-शक्त्या, ययौ जिनानां पद-वंदनाय।
निशम्य तीर्थातिशयं सुरेभ्यः, स गौतमो यच्छतु वांछितं मे॥५॥
त्रिपंच-संख्या-शत-तापसानां, तपः-कृशानामपुनर्भवाय।
अक्षीण-लब्ध्या परमान्नदाता, स गौतमो यच्छतु वांछितं मे॥६॥
सदक्षिणं भोजनमेव देयं, साधर्मिकं संघ-सपर्ययेति।
कैवल्यवस्त्रं प्रददौ मुनीनां, स गौतमो यच्छतु वांछितं मे॥७॥
शिवं गते भर्तरि वीरनाथे, युगप्रधानत्वमिहैव मत्वा।
पट्टाभिषेको विदधे सुरेन्द्रैः, स गौतमो यच्छतु वांछितं मे॥८॥
त्रैलोक्यबीजं परमेष्ठि बीजं, सज्ञान बीजं जिनराज बीजं।
यन्नाम चोक्तं विदधाति सिद्धिं, स गौतमो यच्छतु वांछितं मे॥९॥
श्री गौतमस्याष्टक-मादरेण, प्रबोधकाले मुनिपुंगवा ये।
पठंति ते सूरिपदं सदैवा-नंदं लभंते नितरां क्रमेण॥१०॥

गुरु गौतम गुण गीतिका

(तर्ज : नाथ निरंजन)

परम भक्ति गुण युक्त महोदय लब्धि निधान महादानी।
अद्‌भुत रूप अलौकिक वृत्ति पवित्र चरित्र महाज्ञानी।
हृदय चक्षु उद्‌घाटन में जो है अमोघ अनुपम सुरमो।
वीर जिनेश्वर आदिम गणधर श्री गुरू गौतम नित्य नमो।।1।।
अपने पास न था फिर भी जो केवलज्ञान दिया करते।
इच्छित दान में कल्पवृक्ष भी जिनकी समता नहीं धरते।
वांछित कारण बंधु अकारण क्यूं घर छोड़ के दूर भमो।
वीर जिनेश्वर आदिम गणधर श्री गुरू गौतम नित्य नमो।।2।।
प्राप्त रूप अनुरागवती शुभ केवल लक्ष्मी की न कभी।
चाह करी गुरू भक्ति राग में, मस्त हुए कर त्याग सभी।
प्रातः में उठ नाम लिये जन पावत भोजन घी चूरमो।
वीर जिनेश्वर आदिम गणधर श्री गुरू गौतम नित्य नमो।।3।।
तद्‌भव सिद्धि चढ़े निज लब्धि से अष्टापद जिन वंदन को।
प्रतिबोधित पंद्रह सौ तापस करते कर्म निकंदन को।
अक्षय लब्धि से क्षीर पान कर शिव रमणी के संग रमो।
वीर जिनेश्वर आदिम गणधर श्री गुरू गौतम नित्य नमो।।4।।
जो वसुभूति के पुत्र हुए वसुभूति जनक पदवी धरते।
पृथ्वी सुत मंगल रूप हुए हाँ, सर्व अमंगल को हरते।
यह आदर्श धरो नित सम्मुख चंचल इन्द्रिय चित्त दमो।
वीर जिनेश्वर आदिम गणधर श्री गुरू गौतम नित्य नमो।।5।।
सुखसागर भगवान सदा हरिपूज्य सुगणपति विघ्न हरे।
दिव्य कवीन्द्र वितन्द्र हुए जिनका शिव हेतु सुध्यान धरे।
द्रव्य भाव से गौतम स्वामी चरण शरण को पा विरमो।
वीर जिनेश्वर आदिम गणधर श्री गुरू गौतम नित्य नमो।।6।।

अनुक्रम

	तुष्टि	5
	श्रद्धामृतम्	7
	मंगलं गौतम प्रभुः	11
1.	अवतरण	27
2.	नामकरण	29
3.	श्रुत-सम्पदा	31
4.	शरीर सम्पदा	34
5.	शिष्य सम्पदा	36
6.	यज्ञ-कुशलता	38
7.	अंतिम यज्ञ	40
8.	महाश्रमण महावीर	46
9.	चुनौती	48
10.	अहंकार की हुंकार	50
11.	संशय का निराकरण	53
12.	शिष्यत्व की पराकाष्ठा	56
13.	गणधर-स्थापना	58
14.	भंते! किं तत्तं?	60
15.	गुणवान् गौतम	63
16.	घोर तपस्वी	65
17.	जिज्ञासा-समाधान	67

18.	लघुता का उत्तुंग शिखर	71
19.	प्रभुजी! तुम चंदन, हम पानी	74
20.	इतिहास के पन्ने : मरीचि और कपिल	76
21.	स्वामी और सारथी	79
22.	साधना के अचल सुमेरु	83
23.	लब्धि तणा भण्डार	86
24.	एक अज्ञात शक्ति का परिचय	89
25.	पूर्व परिचित की भूमिका	91
26.	पहला भव : मंगल श्रेष्ठी और सुधर्मा	94
27.	दूसरा भव : सुधर्मा श्रावक और मत्स्य	96
28.	तीसरा भव : कल्याण मित्र	98
29.	चौथा भव : त्रिवेणी संगम	99
30.	नदी अनेक... धारा एक	102
31.	धर्म-मित्र का मिलन	104
32.	संत मिले... बसंत खिले	109
33.	दो धाराओं का एकीकरण	114
34.	वैर की परम्परा और स्नेह का बीज	119
35.	सत्य के दर्शन	124
36.	और कैवल्य ज्योति प्रकट हुई	127
37.	यात्रा बनी मुक्ति का हस्ताक्षर	132
38.	भाव मुनिधर्म का अध्याय	137
39.	कवल ते केवल रूप हुआ...	144
40.	स्नेह के तन्तुओं का ताना-बाना	149
41.	मन का समाधान	155
42.	संदेश वाहक : इन्द्रभूति गौतम	157

43.	परमात्मा महावीर की दिव्य-दृष्टि	161
44.	निर्लिप्त महासंत गौतम	164
45.	हृदय का हेत	167
46.	गौतम और अतिमुक्तक	175
47.	भगवान के मोक्षगामी शिष्य कितने?	180
48.	सूर्याभदेव का पूर्वभव	182
49.	मुनि सेवा का मधुर फल	184
50.	भगवान की अनेकान्त-धारा	186
51.	धन्य वह, जो सेवा करे	188
52.	पाप न करिये कोय	190
53.	मृगापुत्र का प्रसंग	193
54.	मैं तो तेरी छाया	198
55.	महादीप का निर्वाण	203
56.	महाव्यथा की महाकथा	208
57.	आँसू में धुला मोह का मैल	212
58.	ज्योति में ज्योति मिली	217

कृपया....

- पुस्तक को फाड़ें, बिगाड़ें नहीं।
- पुस्तक को जमीन पर न रखें।
- पुस्तक का झूठे मुंह स्वाध्याय न करें।
- पुस्तक को रद्दी में न बेचें।
- पुस्तक की आशातना न करें।
- पुस्तक में अश्रद्धा न धरें।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. सूत्रकृतांग सूत्र
2. स्थानांग सूत्र
3. भगवती सूत्र
4. ज्ञाताधर्मकथांग सूत्र
5. उपासक दशांग सूत्र
6. अंतकृतदशांग सूत्र
7. विपाक सूत्र
8. उत्तराध्ययन सूत्र
9. औपपातिक सूत्र
10. नंदी सूत्र
11. कल्पसूत्र
12. आवश्यक सूत्र मलयगिरि वृत्ति
13. कल्पसूत्र सुबोधिका वृत्ति
14. आवश्यक चूर्णि
15. आवश्यक निर्युक्ति
16. त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित्र
17. चउपन्न महापुरिस चरियम्
18. महावीर चरित्र
19. तत्त्वार्थ सूत्र
20. आप्त मीमांसा
21. महावीर चरित्रम्
22. गौतमपृच्छा वृत्ति
23. अजित-शांति स्तोत्र वृत्ति (जिनप्रभ कृत)

1.
अवतरण

भारत भूमि का एक विशाल साम्राज्य खण्ड! मगध देश! सुगंधित भूमि के कण-कण से उठती मीठी सुगन्ध! सम्राट् श्रेणिक की अप्रतिम अनुशासना और सुख-चैन से जीवन-यापन कर रही देशभक्त प्रजा। सम्पन्नता का परिचय देती उत्तुंग अट्टलिकाएँ और त्याग की गरिमा से छलकती कंदराएँ, गुफाएँ। ऐसी पावन भूमि, जहाँ की हवाओं में साधना की सुवास का वास है। धर्मप्राण जनता के रोम-रोम में बसी ज्ञान और ध्यान के प्रति अप्रतिम श्रद्धा जहाँ जीवन के वैभव का बोध देती है, वहीं तर्क और शास्त्रार्थ की परम्परा ठोस तत्त्वज्ञान के प्रति आस्थावान् बनाती है।

मगध देश का ही एक मनभावन हिस्सा नालंदा; और समृद्धि, साधना व संस्कार के केंद्र स्वरूप नालंदा के निकट ही अवस्थित गुब्बर ग्राम / गौवर्यग्राम!

गुब्बर ग्राम अपने आप में श्रुत और साधना, दोनों से ही समृद्ध अभिनव धाम के समान श्रद्धा-केन्द्र था। इसी गाँव में रहते थे वसुभूति नामक यशस्वी विप्रप्रवर!

वसुभूति पण्डितों में सुमेरू के समान उन्नत ज्ञान संपदा से संपन्न थे। वे विचारों से तार्किक, ऐश्वर्य से समृद्ध और ज्ञान से विद्वान् थे। उनके हर कदम का अनुगमन करने वाली उनकी धर्मप्रिया का नाम पृथ्वी था। पृथ्वी स्वयं नारी-सुलभ वात्सल्य, संस्कार, शील, सौन्दर्य, कोमलता आदि गुणों की धात्री थी।

दम्पतियुगल में परस्परपूरक भाव भी अद्‌भुत और सौजन्यशील था। जहाँ वसुभूति के मन में भार्या पृथ्वी के प्रति माधुर्य और कर्त्तव्यनिष्ठा का बोध था, वहीं पति के हर इंगित को आदेश मानकर जीना पृथ्वी की सहज स्वाभाविक विशेषता थी। इस परस्पर स्नेह और समर्पण की सुगंध के कारण उन्होंने निज-जीवन में परम शान्ति का प्रसाद पाया था। कर्त्तव्य और माधुर्य की दो पटरियों पर दौड़ रही जीवन गाड़ी एक नये पड़ाव की ओर बढ़ रही थी।

प्राणप्रिया पृथ्वी ने शुभ मुहूर्त में गर्भ-धारण किया। गर्भ में पल रहा जीव असाधारण कुण्डली का स्वामी था। पूर्व भवों में संचित असीम पुण्य की राशि ने गर्भस्थ जीव के भविष्य को अद्वितीय बना दिया था।

गर्भ के बढ़ते आकार के साथ ही पृथ्वी माता की भावनाएँ भी वृद्धि को प्राप्त हो रही थीं। वर्धमान शुभ भाव विविध रूपों में सहजतया अभिव्यक्त होते। कभी ज्ञान-निष्ठा की रश्मियाँ बिखरतीं तो कभी करुणा की पवित्रधारा प्रवाहित होती।। कभी मौन की परिभाषा प्रस्फुटित होती तो कभी प्राणी मात्र के प्रति मैत्री का भाव साकार होता। देखते-देखते नौ मास की अवधि व्यतीत हो गयी। पुण्य घड़ी, पुण्य पल में धरती पर जैसे एक सूर्य अवतरित हुआ। चिहुँदिशि आनंद का संदेश प्रसारित हो गया। धरती और अम्बर में महोत्सव आयोजित हुआ।

वह शुभ समय था ईसा पूर्व 607! ज्येष्ठा नक्षत्र ने उद्‌घोषणा कर दी कि यह शिशु सुमेरू गिरिवर के सदृश ऊँचाइयों को प्राप्त कर साधना का शिखर और समय का अमिट हस्ताक्षर बनेगा।

❑ आवश्यक सूत्र (मलयवृत्ति)

2.
नामकरण

अद्‌भुत शिशु की निर्दोष किलकारियों से विप्रवर्य का आँगन मधुबन की भाँति खिल उठा। मां पृथ्वी की प्रसन्नता के सागर का तो कोई छोर ही नहीं था। पल भर के लिये भी शिशु यदि आँखों से दूर हो जाता तो उसकी रिक्तता मन को कचोट जाती।

अहा! इस बालक की दिव्य चेष्टाओं में जैसे भगवत्ता टपकती है।

निर्दोष मुखमण्डल!

निर्मल अठखेलियाँ!

निजानंद से छलकती मनमोहनी मुस्कान!

इन सबको देखकर माँ तो अपने बच्चे पर न्यौछावर हो जाती। निज बाल की क्रीड़ाओं से प्रसन्न माँ की स्मृतियों में तरंगित हो जाता वह दिन, जिस दिन पुण्यशाली सपूत की कुण्डली का निर्माण करते हुए ज्योतिषी प्रवर ने कहा था- ओहोऽऽऽहोऽऽहो.....! यह बालक अद्‌भुत है तो इसकी मुख-मुद्रा भी अद्‌भुत है। ..... अद्‌भुत है इसकी कुण्डली; अद्‌भुत है नवग्रहों की स्थिति और अद्‌भुत है इस कुण्डली का स्वामी। जैसे इन्द्र देवों पर और राजा प्रजा पर राज करता है, वैसे ही यह दिव्य शिशु संसार के हृदय पर राज करेगा।

ज्योतिषी प्रवर! जब शिशु का सौभाग्य और समुज्ज्वल भविष्य इतना अनुपम है तब तो ग्रहों में सूर्य की भांति इस अद्‌भुत

शिशु का नाम इन्द्रभूति ही रखना चाहिये!

'इन्द्रभूति' शब्द की गुणवत्ता ने स्वयमेव विप्रप्रवर एवं ज्योतिषीवर्य के होंठों को मीठी मुस्कान से भर दिया।

अतीत की मधुर स्मृतियों में खोयी पृथ्वी माता को जैसे वसुभूति ने झिंझोड़ा- देवी! अब इन्द्रभूति को अतिशीघ्र गुरुकुल के वातावरण में भेजना चाहिये ताकि यह वेद, वेदांग और व्याकरण की समस्त विद्याओं में विद्वान् बने और विश्व के अनन्त क्षितिज पर सूर्य की भांति चमक सके।

इन्द्रभूति गौतम के अग्निभूति और वायुभूति नामक दो सहोदर थे। तीनों भ्राताओं में इन्द्रभूति सबसे ज्येष्ठ, अग्निभूति मंझले और वायुभूति सबसे कनिष्ठ थे।

3.
श्रुत-सम्पदा

'गुरु' का शाब्दिक अर्थ 'वजनदार' होता है।

गुरु अर्थात् जो अज्ञान के अंधकार का समापन करे और ज्ञान के आलोक से आत्मा को प्रकाशित करे।

भारतीय संस्कृति का उच्चतम आदर्श तत्त्व गुरु है; और जहाँ अनेक आत्मार्थी आत्माएँ गुरु-चरणों में समर्पित होकर सामूहिक रूप से अध्यात्म और जीवन के रहस्य का अध्ययन करती हैं, उसे गुरुकुल कहते है।

यज्ञोपवीत संस्कार के बाद बाल इन्द्रभूति का गुरुकुल में प्रवेश हुआ। उसने यथाशीघ्र ही पाठ्यक्रम की सारी प्रारंभिक पोथियाँ कंठस्थ और हृदयस्थ कर लीं; क्योंकि उसके पास अनेक गुणों की चाबियाँ थीं....

- ज्ञानावरणीय कर्म का क्षयोपशम!
- ज्ञान-वैभव के प्रति अतुल आस्था!
- पावन पुरुषार्थ का दिव्य संकल्प बल! और.....
- गुरु आज्ञा और चरणों का अस्खलित अनुसरण!

कुशाग्र बुद्धि, समर्पित हृदय और एकाग्र मानस के कारण जहाँ इन्द्रभूति अल्पावधि में ही अपने गुरुजनों के सर्वाधिक प्रिय, आत्मीय और कृपापात्र शिष्य बन गये, वहीं अपने सुंदर स्वभाव, विवेकपूर्ण व्यवहार और सौजन्यशील कार्यशैली के कारण सहपाठियों के स्नेह-केन्द्र में स्थापित हो गये।

इन्द्रभूति कद में भले ही उन्नत नहीं थे, परंतु समुन्नत प्रज्ञा के स्वामी थे। इसी कारण उन्हें अच्छी तरह बोध था कि ज्ञान से बढ़कर कोई धन नहीं।

न चौरहार्यं, न च राजहार्यं, न भ्रातृभाज्यं न च भारकारि।
व्यये कृते वर्धत एव नित्यं, विद्याधनं सर्वधनं प्रधानम्॥

- ज्ञान-धन को कोई भी चोर चुरा नहीं सकता।
- ज्ञान-धन पर राजा अधिकार जमा नहीं सकता।
- ज्ञान-धन का भ्राताओं में विभाग हो नहीं सकता।
- ज्ञान-धन का कभी कोई बोझ नहीं होता।
- ज्ञान तो एक ऐसा महाधन है, जो व्यय करने के साथ बढ़ता है। इसी कारण ज्ञान-धन सर्व प्रकार के धन में प्रधान धन है।

इन्द्रभूति का स्पष्ट लक्ष्य एक ही था कि मुझे ज्ञान की समस्त विधाओं, रहस्यों और सिद्धान्तों में न केवल पारगामी बनना है अपितु उन्हें हृदयंगम भी करना है; क्योंकि श्रुत की स्वर्ण-किरणों से ही स्व-पर का बोध होता है।

सूर्य हो या चन्द्र, दीपक हो या मणि, ये सभी जगत् की दिशा को प्रकाशित कर सकते हैं पर ज्ञान वह प्रकाश स्तम्भ है, जो सर्वत्र-सर्वदा जीवन की दिशा और दशा को आलोकित करता है। सच ही कहा है- **'ज्ञानी सर्वत्र पूज्यते।'**

लक्ष्य के उन्नत शिखर की ओर बढ़ते हुए इन्द्रभूति यौवन अवस्था में प्रवेश करने के पूर्व ही ज्ञान-रश्मि के सहस्त्रांशु बन गये। वे चौदह विद्याओं के अद्वितीय विद्वान् और पण्डितों में प्रवर थे।

सर्वप्रथम ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद, इन चारों वेदों का तलस्पर्शी ज्ञान पाया। तत्पश्चात् शिक्षा, कल्प, व्याकरण,

निरुक्त, छन्द और ज्योतिष, इन छह वेदांगों का सम्यग् अर्थ करने में निपुण और समर्थ विद्वान् बने। इसके बाद मीमांसा, न्याय, धर्मशास्त्र और पुराण, इन चार उपांगों के उत्तम ज्ञाता ज्ञानाचार्य के रूप में प्रतिष्ठित हुए।

इस प्रकार चौदह विद्याओं में पूर्ण निपुण इन्द्रभूति 25 वर्ष की उम्र में ज्ञान संपदा के अक्षय कोष बन गये तथा बाद में हजारों विद्वानों को पराजित करके अपनी जय-पताका ऊंचे नील गगन में लहराई थी।

❑ आवश्यक सूत्र (मलयवृत्ति)

4.
शरीर सम्पदा

विद्वद्वरेण्य इन्द्रभूति श्रुत-सम्पदा की दृष्टि से सुमेरू के समान समुन्नत तथा सागर के समान गंभीर थे तो शरीर-संपदा से सूर्य के समान तेजस्वी और चन्द्र के समान सौम्य थे।

भगवती सूत्र में इन्द्रभूति के आकर्षक कायिक-वैभव का वर्णन विस्तार से उपलब्ध होता है-

सात हाथ प्रमाण उनका देहमान नयन-युगल को तृप्ति देने वाला था। समचतुरस्र आकार वाला सुगठित और सुंदर शरीर देवोपम कान्तिमान था तो वज्र के सदृश सुदृढ़ वज्रऋषभनाराच संघयण उनकी पराक्रमी भुजाओं की शक्ति का आधार था।

उनका गौरवर्ण और उस पर केशरवर्णीय कौशेय उनके अनुपम लावण्य को और अधिक अद्‌भुत और आकर्षक बना देता था। दिव्य सौन्दर्य ऐसा लगता, जैसे कि कोई देव धरा पर उतर आया है। विशाल और उन्नत भाल उनकी ज्ञान-गरिमा का परिचय देता था तो पंखुड़ियों से लाल गुलाबी होंठों पर सदैव छायी रहने वाली मोहनी मुस्कान आनंद से छलकती रहती थी।

उनकी चाल तो गजब की थी। **'गय जिम दीसे गाजतो ए'।** इन्द्रभूति चलते तो लगता कि कोई गजराज अपनी मस्त मस्तानी चाल से चला जा रहा है।

निर्लिप्त नेत्र!

प्रलम्ब कर्ण!

उन्नत वक्षस्थल!

निर्विकार कमनीय काया!

उज्ज्वल आभामण्डल से टपकती ज्ञान की अमी!

निश्चित ही इन्द्रभूति गौतम की पुण्यशाली काया में गजब का अप्रतिम आकर्षण था, जो दर्शक को प्रथम क्षण में ही अपनी तरफ आकृष्ट कर लेता था।

5.
शिष्य सम्पदा

इन्द्रभूति गौतम विशाल शिष्य सम्पदा के स्वामी थे। विशेषावश्यक भाष्य के गणधरवाद के अनुसार 'इन्द्रभूति गौतम पांच सौ शिष्यों के गुरु थे।'

वे शिष्य भी सामान्य नहीं, विशिष्ट गुरु के विशिष्ट शिष्य। सारे शिष्य एक से बढ़कर एक। वे सुयोग्य और प्रतिभासम्पन्न होने के साथ-साथ वेदविज्ञ, कर्मकाण्डी और वाद-निपुण थे।

पाँच सौ शिष्य अपने गुरु के साथ उसी प्रकार रहते थे, जैसे शरीर के साथ उसकी छाया। गुरु के चरणों का अनुगमन, आज्ञा का अनुसरण और प्रवृत्ति का अनुकरण करना उनकी समर्पित चेतना का विशिष्ट गुण था।

यह सहजतः अनुमान लगाया जा सकता है कि इन्द्रभूति गौतम ने अपने अध्यापन काल में हजारों शिष्यों को चौदह विद्याओं की विशेष-शिक्षा देकर उन्हें विशिष्ट विद्वत्ता का वरदान प्रदान किया होगा। पाँच सौ शिष्यों की संख्या तो उन विद्यार्थियों की अपेक्षा से है, जिन्होंने अपना जीवन गुरु चरणों में समर्पित कर दिया था।

जिन्हें जीवन के श्रेष्ठतम उद्देश्य का बोध हो गया है, जिन्हें ज्ञान के अतिरिक्त सब कुछ निरस प्रतीत हुआ है, जिस चेतना में ज्ञान के अतिरिक्त किसी भी पदार्थ में तृप्ति और तुष्टि की झंखना नहीं है, ऐसी ज्ञान पिपासु आत्माएँ विप्रवर्य इन्द्रभूति की शरण में आती और **'ज्ञानामृतम् भोजनम्'** के द्वारा अत्युत्तम समाधि, सुख

और संतुष्टि के अनुभव रस का आस्वादन करती।

इन्द्रभूति गौतम मात्र ज्ञान के भण्डार नहीं थे। उनका अध्यापन कौशल भी अनूठा था। जटिल से भी जटिल तत्त्व को वे ऐसी सरल शैली में प्रस्तुत करते कि वह गहन और गूढ़ तत्त्व सहज ही मानस-कक्ष के साथ-साथ हृदय-कोष में भी स्थापित हो जाता।

पण्डितप्रवर इन्द्रभूति अनूठी प्रतिभा के अक्षयपुंज थे, इसी कारण सुदूर प्रदेशों से हजारों विद्यार्थी विद्यार्जन की गहरी प्यास लिये उनकी शरण में पहुँचते और ज्ञान का अमृत-दान पाकर प्रसन्नता मिश्रित कृतज्ञता से भर उठते। इतना ही नहीं, इन्द्रभूति के अप्रतिम वैदुष्य और वैशिष्ट्य की गौरव गाथा गाते-गाते बड़े-बड़े पण्डित और शास्त्रज्ञ भी नहीं थकते थे।

विद्वद्वरेण्य इन्द्रभूति ने उत्तर भारत में सिंहवत् विचरण करते हुए अनेक पण्डितों और विद्वानों को शास्त्रार्थ में पराजित किया था और अपने ज्ञान-विज्ञान की विजय पताका फहराई थी।

उपरोक्त विवेचन से अत्यन्त स्पष्ट है कि चौदह विद्या में अतीव निष्णात इन्द्रभूति के समान कोई भी विद्वान् समूचे मगध देश में नहीं था।

6.
यज्ञ-कुशलता

प्रकाण्ड विद्वान् इन्द्रभूति गौतम प्रमुखतः मीमांसक मत के उपासक थे। इसी कारण कर्मकाण्ड आदि में उनका विशेष विश्वास था। वे स्वयं तो प्रतिदिन यज्ञ करते ही थे, साथ ही साथ विशाल यज्ञ-अनुष्ठानों का कुशल संचालन भी करते थे।

याज्ञ आदि में विशेष निपुणता होने के कारण उनकी यज्ञाचार्य के रूप में विशिष्ट प्रसिद्धि भी थी। फलस्वरूप धन-धान्य से सम्पन्न गृहस्थ उनके चरणों में आते और निवेदन करते- 'हे पण्डितवर्य! आपका यज्ञ-कौशल आपकी महाप्रज्ञा और विप्रविज्ञा का परिचायक तत्त्व है। हम प्रसन्नतापूर्वक आपको आमंत्रित करते हुए परम प्रमोद का अनुभव करते हैं और स्वयं को धन्य मानते हैं। आप अपने शिष्य मण्डल के साथ पधारें और अपने दिशा-निर्देशन में सम्पूर्ण यज्ञ का संचालन करें।'

यज्ञाचार्य के रूप में उनका व्यक्तित्त्व निखार पा चुका था। अभ्यास और औत्पातिकी बुद्धि के कारण यज्ञ करवाने का उनका जो अंदाज था, वह भी निराला था।

गौरवर्णीय काया पर पीतवर्णीय वस्त्रों से अलंकृत होकर जब वे यज्ञ की मुख्य पीठिका पर विराजमान होते, तब लगता कि केसरी सिंह गहन वन के सर्वोच्च सिंहासन पर विराज रहा है। वे जब विशुद्ध और स्पष्ट ध्वनि में, निर्भीक शब्द शैली में मंत्रों का उच्चारण करते, तब तो लगता कि कोई वनराज गर्जना कर रहा है।

ललाट पर लगा त्रिपुण्ड....।

स्फुट मंत्र बुदबुदाते होंठ....।

सुव्यवस्थित परिधान धारण की कला....।

इन्हीं विशिष्टताओं के कारण इन्द्रभूति की इन्द्र की भांति संपूर्ण भारतवर्ष में प्रतिष्ठा और कीर्ति का विस्तार था। यशस्वी और तेजस्वी इन्द्रभूति गौतम द्वारा संचालित यज्ञ-विधान को निहारने के लिये दूर-दूर से हजारों व्यक्ति आते और कलात्मक यज्ञ-अनुष्ठान को देखकर अभिभूत हो जाते।

7.
अंतिम यज्ञ

अपापापुरी, जो सम्प्रति पावापुरी के नाम से प्रसिद्ध है, इसी नगर में सोमिल नामक धनवान विप्रवर्य रहते थे। राजदरबार तक उनकी अच्छी ख्याति और गहरी पैठ थी। सोमिल धन-धान्य से जितने सम्पन्न थे, उतने ही उदारता के भावों से भी समृद्ध थे। उनकी यज्ञ आदि कर्मकाण्डों में विशेष श्रद्धा थी।

एकदा सोमिल के मन में विचार उद्‌भूत हुआ कि क्यों न मैं अपनी चंचला लक्ष्मी का यज्ञ-अनुष्ठान में व्यय करके महापुण्य का उपार्जन करूँ? वैसे भी सोमिल का जीवन धर्म भावना से संयुत था, अतः विराट् यज्ञ आयोजन का विचार शीघ्र ही आचार में परिवर्तित हो गया।

इसके लिये सर्वप्रथम उसने शक्ति और समृद्धि के अनुरूप मिथिला, राजगृही आदि में रहने वाले अनेक दिग्गज और कर्मकाण्ड में कुशल पण्डितों को आमंत्रित किया।

इस महायज्ञ-अनुष्ठान में प्रदेश के अग्रगण्य, सर्वमान्य और विद्वद्वर्य इन्द्रभूति, अग्निभूति, वायुभूति, व्यक्त, सुधर्मा, मण्डित, मौर्यपुत्र, अकम्पित, अचलभ्राता, मेतार्य और प्रभास; इन ग्यारह यज्ञ-निपुण विप्रजनों को निवेदन-पत्र प्रेषित करने के साथ-साथ उन्हें प्रत्यक्ष रूप से भी आमंत्रित किया।

इस विराट् यज्ञ-विधान की कीर्ति दिग्दिगंत में व्याप्त हो गयी, क्योंकि सोमिल की अतुलनीय उदारता और इन्द्रभूति गौतम

आदि विद्वज्जनों की सुदक्ष कार्य-शैली से जनसमूह सुपरिचित था। धवल यशोगाथा और कार्य कुशलता के कारण इन्द्रभूति गौतम को यज्ञ अनुष्ठान के मुख्य आचार्य के पद पर अभिषिक्त किया गया था।

हजारों-हजारों श्रद्धा सम्पन्न व्यक्तियों के आगमन की पूर्ण संभावना से यह यज्ञ एक प्रकार से उस समय का एक ऐतिहासिक, महावैभवशाली और भव्यातिभव्य आयोजन था।

यद्यपि विशाल संख्या में महापण्डित इस अनूठे यज्ञ-अनुष्ठान में उपस्थित हो चुके थे, पर मुख्य संयोजक, संचालक और सूत्रधार महाविप्र यज्ञाचार्य इन्द्रभूति स्वयं थे। सारी व्यवस्थाएँ उनकी तीक्ष्ण दृष्टि के तले सम्पन्न हो रही थीं।

निर्धारित समय पर दुर्धर्ष विद्वान् इन्द्रभूति ने अपने पाँच सौ शिष्यों के साथ महायज्ञ के विशाल मण्डप में प्रवेश किया। उनके अनुज पण्डित अग्निभूति और वायुभूति भी अपने पाँच-पाँच सौ हस्तदीक्षित शिष्यों के साथ इस विशिष्ट यज्ञ के प्रमुख अंग बने।

पाँच-पाँच सौ शिष्यों के विशाल समुदाय के साथ व्यक्त और सुधर्मा भी आये और महायज्ञ की गरिमा को चंद्रवत दीप्तिमान कर गये।

वे पंडित मण्डित और मौर्यपुत्र भी इस यज्ञ के निश्रा दाता बने, जो 350-350 शिष्यों के स्वामी थे।

अकम्पित, अचलभ्राता, मैतार्य और प्रभास, ये चारों विप्रप्रवर 300-300 शिष्य परिवार के साथ पधारे और इस भव्य अनुष्ठान का गौरव बढ़ाया।

इस भव्यतम महायज्ञ की यशस्विता एवं इन्द्रभूति इत्यादि ग्यारह विचक्षण पण्डितों की उपस्थिति से आकर्षित होकर अपार

जनमेदिनी यज्ञ-दर्शनार्थ उमड़ पड़ी। उनके आवास, भोजन आदि की व्यवस्था भी उत्तम ढंग से की गयी थी।

विशाल यज्ञ मण्डप की शोभा देखते ही बनती थी। पहली बार विराट पैमाने पर यज्ञ का अनुष्ठान सम्पन्न हो रहा था, अतः देश तथा प्रदेश के कोने-कोने से लोगों का रेला और मेला अपापापुरी की ओर बढ़ रहा था। अनेक श्रद्धालु श्रद्धा के कारण तो बहुत से लोग कुतुहल से आ रहे थे। किसी के मन में उत्सुकता थी तो किसी के हृदय में विशाल यज्ञ-उत्सव को निहारने की उत्कंठा थी। जिज्ञासा, आस्था, आनंद जैसे विविध भावों की निर्मल सरिता मिलकर जैसे सागर का आकार ग्रहण कर रही थी।

विराट् यज्ञ मण्डप!

यज्ञ-मण्डप की अनूठी आभा!

सैकड़ों हवन-कुण्ड!

सुदीर्घ दर्शक दीर्घा!

वह भी एक अनूठा दृश्य था, जब अपापानगरी के उस अद्‌भुत यज्ञ मण्डप और इन्द्रभूति आदि यज्ञ-विज्ञों को प्रफुल्लित चित्त से विपुल जनसमूह निहार रहा था।

वह भी एक अद्‌भुत आनंद था, जब सहस्र कण्ठों से उच्चरित वेदमंत्रों की सुमधुर ध्वनि से सकल दिशाएँ-विदिशाएँ गुंजायमान हो रही थीं।

वह भी एक अपूर्व उत्सव था, जब यज्ञवेदियों में घृतादि की आहुतियों की सुगंध से सारा वातावरण सुगंधित हो रहा था।

ओह! ऐसा अनुपम दृश्य! अहा! ऐसी अलौकिक हर्ष की अनुभूतियाँ! वाह! पवित्र और महमोहक सुगंध की ऐसी सुखद बयारें।

विशालतम यज्ञ मण्डप में उपस्थित जन समुदाय मंत्र-स्वरावलियों में एकतान होकर अनिर्वचनीय आनंद से झूम उठा।

सहसा यज्ञाचार्यों और यज्ञ-दर्शकों की दृष्टि अम्बर की ओर उठी! विस्मय और आह्लाद से उनका हृत्तंत्र झंकृत हो उठा- अरे, यह चमत्कार ही है कि यज्ञवेदियों से उठती घटाघोप धूम्र की घटाओं से आच्छादित नभमण्डल देव-विमानों से भर गया है। हजारों देव-विमानों को देखकर उनकी आँखें आश्चर्य की चमक से चुंधिया गयी। इधर इन्द्रभूति अपने अंतर के आनंद को भीतर में समेट न सके। अत्यंत प्रमुदित होकर धीर-गंभीर स्वरावलि में मुखर हुए- यजमान सोमिल! देखा, यज्ञ और वेदमंत्रों का असीम प्रभाव। तभी तो हजारों-हजारों देव-देवेन्द्र अपनी-अपनी आहुति ग्रहण करने के लिये सशरीर यहाँ उपस्थित हो रहे हैं। लगता है कि सतयुग का स्वप्निल दृश्य साकार हो गया है।

वाह..... वाह....! आज तुम्हारा मनोरथ फल गया और मेरा अभीष्ट सिद्ध हो गया। कहते हुए इन्द्रभूति आनंद के घुंघरू बांधकर नाच उठे। मुख पर गर्व की दीप्ति दीपित हो उठी।

सोमिल ने इन्द्रभूति के स्वर में अपना स्वर मिलाते हुए कहा- पण्डित शिरोमणि! यज्ञचूड़ामणि! आप जैसे अप्रतिम यज्ञाचार्य की दिव्य ध्वनि और मंत्रोच्चारण की विशिष्ट शैली से प्रभावित होकर ही ये देव अवनि पर अवतरित हो रहे हैं। कमाल हो गया पण्डित प्रवर! मैं आपकी बार-बार अभिनंदना करता हूँ। धन्य हैं आप और धन्य है आपका व्यक्तित्व। समस्त पण्डितों की अभिवंदना में उसके हाथ सहज ही जुड़ गये। माथा श्रद्धा से विनत हो गया।

प्रशंसा और प्रसन्नता से फूले न समाते सारे विप्रवर्य इन्द्रभूति

के साथ अत्यन्त उच्च स्वर से यंत्र, मंत्र और तंत्र के विधान करते हुए आहुतियाँ देने लगे। स्वाहा और संवोषट् के तुमुल घोष से हर्षित होकर गगन नृत्य कर उठा।

कुछ क्षणों के बाद ही यह प्रसन्नता खिन्नता में बदलने वाली है, इस बात का आभास भला इन्द्रभूति को कहाँ था? आहुति देते हुए इन्द्रभूति आदि की दृष्टि नभतल पर पड़ी तो वे शंका और विस्मय से भर गये।

अरे! यह क्या? ये सारे देव विमान अपापा के इस यज्ञमण्डप में उतरने वाले थे, पर ये यहाँ नहीं उतर रहे। इस अतिशय-धर्म क्षेत्र को लांघ कर कहीं और जा रहे हैं! तो क्या देव दिशा भूल गये हैं या लक्ष्य से च्युत हो रहे हैं? विचारों के भँवरजाल में उलझे इन्द्रभूति के आहुति देते हाथ स्तंभित हो गये। मंत्रोच्चारण की ध्वनि स्वतः मंद हो चली। गर्वोन्नत ललाट पर प्रस्वेद बिन्दु उभर आये। तभी उनके कानों से देवों का वार्तालाप टकराया- चलो, जल्दी चलो। सर्वज्ञ महावीर का अपापा के महसेन वन में समवसरण लगा है, वहाँ वे धर्म का उद्योत कर रहे हैं।

वार्तालाप करते हुए देवों का विमान आगे बढ़ गया।

पल भर के लिये इन्द्रभूति गौतम विस्मय से भर गये। कौन है यह महावीर? इन देवों के वार्तालाप से 'वह सर्वज्ञ है' ऐसा ध्वनित होता है, पर क्या ऐसा संभव है कि मेरे अतिरिक्त भी कोई सर्वज्ञ इस धरा पर है! शंका की गुत्थियों में उलझे इन्द्रभूति पर फिर से वज्रपात हुआ। नभतल पर विचरण कर रहे दो देवों का संवाद कर्ण कुहरों से आ टकराया- चलो महसेन वन में, वहाँ धर्म का ठाठ लगा है क्योंकि मुनींद्र महावीर केवलज्ञान को उपलब्ध हुए हैं। अब तनिक भी

विलम्ब उचित नहीं है।

शंका, अविश्वास, विस्मय और जिज्ञासा से भरकर इन्द्रभूति ने अपने शिष्यों को आदेश दिया- जाओ महसेन वन की ओर! ये महावीर नाम का आदमी कौन है, कहाँ से आया है और क्या कर रहा है? इसका स्पष्ट प्रत्युत्तर लेकर आओ।

छात्र गुर्वाज्ञा प्राप्त कर महसेन वन की ओर प्रस्थान कर गये और इधर इन्द्रभूति की पीड़ा का कोई पार नहीं था। ओह! यह क्या से क्या हो गया? मैंने तो सोचा था कि मेरे यज्ञ विधान से प्रभावित होकर देवगण पधार रहे हैं, पर मेरे सारे सुनहरे अरमानों पर पानी फिर गया।

क्या इन यज्ञों का कोई प्रभाव नहीं! इन वेद-मंत्रों की कोई महिमा नहीं। विविध शंकाओं-कुशंकाओं के जाल से घिरे इन्द्रभूति किसी भी तरह से आश्वस्त नहीं हो पा रहे थे।

यज्ञ प्रमुखों में ही नहीं, भारी जनमेदिनी में भी इसी बात की चर्चा थी कि देव-विमान यज्ञ से नहीं, सर्वज्ञ से प्रभावित होकर आ रहे हैं। वे वेद मंत्रों से नहीं, वीर-महावीर से आकर्षित हुए हैं।

उनकी श्रद्धा के फूल मुरझाने लगे और इन्द्रभूति को अपना कीर्ति कलश धूलिसात् होता हुआ प्रतीत हुआ।

❑ त्रिषष्ठि शलाका पुरुष चरित्र, पर्व-10, सर्ग-5

8.
महाश्रमण महावीर

ज्ञात कुल के अप्रतिम गौरव राजकुमार वर्धमान संसार के सारे भौतिक साधनों को छोड़कर श्रमण जीवन के पर्याय बन गये। साढ़े बारह वर्ष पर्यन्त अनुकूल और प्रतिकूल, समस्त परीषहों को समभाव से सहते रहे।

ऋजुबालिका नदी का किनारा।

वैशाख शुक्ला दशमी का मंगल दिवस।

गोदुग्धासन में आसीन महाश्रमण महावीर।

उत्तरोत्तर शुक्लत्व की ओर चढ़ती शुभ्र भावधारा।

.....और देखते-देखते मुनींद्र महावीर क्षपक श्रेणी में आरूढ़ हुए तथा चारों घनघाती कर्मों का क्षय कर अक्षय ज्ञान के पुंज बन गये। उसी समय देवों ने समवसरण की संरचना की। स्वर्ण सिंहासन पर निर्लिप्त प्रभु ने विराजमान होकर धर्म का उपदेश दिया। सभी ने जिनेंद्र और जिनवाणी को अहोभाव से बधाया, पर किसी भी प्राणी ने व्रत-महाव्रत स्वीकार नहीं किया, अतः परमात्मा महावीर की पहली देशना निष्फल होने स्वरूप आश्चर्य हुआ।

वहाँ से विहार कर प्रभु आगामी प्रभात में अपापापुरी पधारे। पृथ्वी का कण-कण प्रभु का संस्पर्श पाकर महक उठा। देवों ने महसेन वन में समवसरण की सुंदर रचना की। इसी दिव्य समवसरण में सुर-नर-किन्नर प्रभु के चरण-शरण की सेवा में उपस्थित थे। सर्वज्ञ महावीर अपनी अमोघ अमृतवाणी से देशना की गंगा बहा रहे

थे- जीवन का सार एक मात्र धर्म है। धर्म हीन मनुष्य आकृति से तो मनुष्य होता है, पर प्रकृति से पशु कहलाता है।

इसी समवसरण के ठीक सामने इन्द्रभूति गौतम के शिष्य खड़े-खड़े महावीर की जानकारी ले रहे थे। एक शिष्य ने निकट से गुजरते सज्जन से पूछा- महोदय! यहाँ पर यह मानव-देवमेदिनी क्या कर रही है? कोई नाटक चल रहा है या नृत्य-गान?

वे सज्जन बोले- वेदविज्ञ! क्या आपको पता नहीं कि जैन धर्म के चौबीसवें तीर्थंकर महाश्रमण महावीर सर्वश्रेष्ठ ज्ञान को उपलब्ध हो चुके हैं। यहाँ उनका अलौकिक समवसरण लगा है, जिसमें विराजमान होकर सर्वज्ञ महावीर देशना प्रदान कर रहे हैं। कहकर वे सज्जन तत्काल समवसरण में प्रविष्ट हो गये।

इधर उन शिष्यों की आँखें अपूर्व समवसरण की आभा देखकर आश्चर्य से चौड़ी हुई जा रही थी।

ओह! यह स्थान नेत्रों को जितना नव्य और भव्य लग रहा है, उतना ही मन को भी मंत्रमुग्ध करने वाला है।

तीन वलय हैं इसके!

- चांदी का वलय और सोने के कंगूरे।
- सोना का वलय और रत्नों के कंगूरे।
- रत्नों का वलय और मणियों के कंगूरे।

समवसरण के ठीक मध्य में स्थित अशोक वृक्ष जैसे सारे शोक-संताप को हरने के लिये आतुर है। सुरपुष्पवृष्टि, देवदुंदुभि, चामर युगल, स्वर्ण सिंहासन, भामण्डल, दिव्यध्वनि और छत्रत्रय.... इनकी सबकी अनुत्तर छटा देखकर उन सभी शिष्यों की अंगुलियाँ दांतों तले आ गयी। ❑ कल्पसूत्र

9.
चुनौती

नहीं! यह नहीं हो सकता कि वह महावीर सर्वज्ञ हो। विश्व के सकल विद्वानों और ज्ञानियों को मैं शास्त्रार्थ में पराजित कर चुका, तब यह सर्वज्ञ कैसा? महाज्ञानी कौन? कहते हुए इन्द्रभूति की भृकुटियाँ तन गयीं। मुख रक्ताभ हो उठा। हाथ-पाँव प्रकम्पित होने लगे।

एक शिष्य ने कहा- गुरुदेव! मैंने सुना है कि वह सर्वज्ञ महावीर अलौकिक शक्ति का भी धारक है और उस शक्ति के प्रभाव से उसके समवसरण में बिल्ली-चूहा, सांप-नेवला और शेर-बकरी एक ही घाट पानी पीते हैं।

व्यंग्यात्मक ठहाका लगाते हुए इन्द्रभूति बोले- हाऽऽ हाऽऽ हाऽऽ! ब्राह्मणों से विद्या प्राप्त करने वाला और विद्वान् विप्रजनों के चरणों का स्पर्श करने वाला एक क्षत्रिय सर्वज्ञ बन बैठा है। ओह भगवान्! लगता है कि सतयुग में कलियुग आ गया है।

इतने में एक शिष्य मुखर हुआ- पर प्रभो! मैंने ऐसी अपार जनमेदिनी कभी नहीं देखी! फिर हजारों देव भी साक्षात् करबद्ध खड़े थे और देवियाँ महावीर की बलैया ले रही थी।

सुनकर पण्डित इन्द्रभूति आहत नागराज और पराजित गजराज की भांति उल्टा प्रहार करने लगे। वे मदोन्मत्त हो अनर्गल प्रलाप करने लगे- अरे! यह सब छल है, प्रपंच है। षड्यंत्र और ढोंग है। मुझे तो लगता है कि कोई धूर्त्त एन्द्रजालिक आया है, जो अपनी मनमोहक

एवं आकर्षक कलाओं से लोगों को बहका रहा है।

सम्मोहनी विद्या से भोले लोगों को पथभ्रष्ट कर रहा है पर शेर की खाल ओढ़कर सियार तब तक ही अन्य प्राणियों को छल सकता है, जब तक कि असली वनराज प्रकट न हो जाये।

मुझे तो इन देवों की बुद्धि पर तरस आता है। ये महावीर नामक प्रपंची से ठगे गये हैं, तभी तो मेरे पवित्र हविष्यान्न और मुझ तुल्य सर्वज्ञ को छोड़कर उसी प्रकार चले गये हैं, जैसे कौवे तीर्थ-नीर का, मेंढक पद्मसरोवर का, मक्खियां सुरभित गोशीर्ष चंदन का एवं शूकर क्षीरोदन का परित्याग करके अन्यत्र चले जाते हैं।

पण्डित इन्द्रभूति गौतम तत्क्षण आसन से उठ खड़े हुए। उत्तरीय वस्त्र व्यवस्थित करके पाँवों में खड़ाऊ धारण किये और अहंकार में आवेशित हो कर बोलने लगे- जैसे एक म्यान में दो तलवारें नहीं रह सकतीं, एक राज्य के दो राजा नहीं हो सकते; वैसे ही मेरे होते हुए इस धरा पर किसी अन्य ज्ञानी का अस्तित्व नहीं हो सकता।

क्या कभी मेरूपर्वत से राई की तुलना हो सकती है? क्या कभी सिंधु से बिंदु की समानता हो सकती है?

नहीं.... तो फिर वह सामान्य प्राणी इस वादी गजकेसरी के सम्मुख कैसे टिक सकता है?

मैं तुरंत जाता हूँ और उसके छल के महल को ध्वस्त करके अपनी विजय पताका फहराता हूँ।

❑ चउपन्न महापुरिस चरियं

10.
अहंकार की हुंकार

अहंकार पर पड़ी चोट से इन्द्रभूति जैसे तिलमिला उठे। उन्हें स्वयं के रहते किसी दूसरे के सर्वज्ञत्व को देख पाना असह्य शूल-पीड़ा को सहने से भी अधिक कष्टप्रद था।

अग्रज इन्द्रभूति को भगवान् महावीर के पास जाने हेतु उद्यत देखकर अनुज अग्निभूति ने कहा- ज्येष्ठार्य! जैसे कमल की कोमल नाल को उखाड़ने के लिए हस्ति शिरोमणि ऐरावत का उपयोग अनावश्यक है, वैसे ही इस महावीर नामक प्रपंची, छद्मशिरोमणि और नगण्य साधारण वादी को जीतने के लिए आप को श्रम उठाने की जरूरत नहीं। आप रुकिये, मैं जाकर अभी, इसी समय उसे परास्त किये देता हूँ।

इन्द्रभूति ने कहा- अनुज! यूं तो यह तथाकथित सर्वज्ञ मेरे किसी भी शिष्य के द्वारा जीता जा सकता है, पर मेरी विवशता है कि किसी भी प्रतिवादी का नाम सुनने के बाद मैं न मौन रख सकता हूँ, न हाथ पर हाथ धरकर बैठा रह सकता हूँ।

जैसे तिल को पीलते समय तिल का कोई एक दाना, धान्य को दलते समय धान्य का कोई एक कण तथा घास को काटते समय कोई एक तृण बच जाता है, वैसे ही मेरे द्वारा समस्त वादियों को जीत लेने के बाद यही महावीर नामक वादी बचा रह गया है।

अपने चिंतन को थोड़ा और तीक्ष्ण बनाते हुए इन्द्रभूति बोले- वत्स! मुझे अपार आश्चर्य हो रहा है कि जब मैंने त्रैलोक्य के

हजारों प्रतिवादियों को पराजित कर दिया, तब पाकशाला की हंडी में पकाये गये अन्न-कणों में से बिना पके कोरडू की भाँति यह एक वादी कैसे अपराजित बच गया? इस एक के अपराजित रहने पर तो विश्व-विजयत्व का मेरा सारा यश ही धूमिल हो जायेगा। कहा भी जाता है कि शरीर में रहे हुए एक साधारण शल्य का शमन न किया जाये तो एक न एक दिन वह शल्य असाध्य बन कर प्राणों का विनाश कर देता है।

छिद्रे स्वल्पेऽपि पोतः किं पयोधौ न निमज्जति?
एकस्मिन्तिष्टके कृष्टे, दुर्गः सर्वोऽपि पात्यते।।7।।

वत्स! क्या जलयान में हुआ एक छोटा सा छिद्र उसे जलराशि में डुबा नहीं देता? क्या नींव के एक पत्थर को खींच लेने पर सारा दुर्ग धराशायी नहीं हो जाता?

मायावी सर्वज्ञ द्वारा देवों को आकृष्ट करने से इन्द्रभूति के जीवन पर भयावह वज्रपात हुआ। उन्हें यश का ध्वज पतित होता सा प्रतीत हुआ। उन्हें निज विद्वत्ता निर्बल होती महसूस हुई।

आवेशपूर्ण स्वरों में पुनः मुखर होते हुए बोले- ओह! इस मायावी ने स्वयं को अनैतिक रूप से जो सर्वज्ञ घोषित किया है, उससे मेरी क्रोधाग्नि भड़क उठी है। वस्तुतः मुझ पर इसका प्रहार वैसा ही है, जैसे मेंढक द्वारा भयंकर कृष्ण भुजंग पर चपत लगाना, स्वर्गलोक वासी देव पर मर्त्यवासी बैल के द्वारा श्रृंग से प्रहार करना, गजराज द्वारा दंत-पंक्ति से गिरिराज को उखाड़ कर धूलिसात करना तथा निर्बल शशक द्वारा सिंह के स्कंध के बालों को खींचना।

जैसे कोई मूढ़ात्मा अपने हाथों से शेषनाग के मस्तक की मणि को लेना चाहता हुआ अपने ही काल को बुलावा भेजता है, वैसे

ही इस महावीर ने भी बालचेष्टा द्वारा सर्वज्ञत्व का आडम्बर रच कर मेरी क्रोधाग्नि को न केवल प्रकट किया है, अपितु अपने विनाश को बुलावा भेजा है।

उच्च स्वर से भयंकर गर्जना करते हुए इन्द्रभूति बोले- हे श्रृंगाल! हे वन्य पशुओं! अब तुम इस जंगल से भाग निकलो। देखो! विकराल क्रोध से दहाड़ता हुआ वनराज तुम्हारा काल बनकर आ रहा है।

❑ कल्पसूत्र (सुबोधिकावृत्ति)

11.
संशय का निराकरण

वादी गजकेसरी इन्द्रभूति की जय।

सरस्वती कण्ठाभरण इन्द्रभूति की जय।

वादीभ पंचानन इन्द्रभूति की जय!

आगे-आगे धीर-गंभीर चाल से चल रहे पंडित प्रवर इन्द्रभूति गौतम और पीछे-पीछे अनुगमन करते पाँच सौ शिष्य! जयकारों से शब्दायमान अम्बर!

त्वरित गति से बढ़ते इन्द्रभूति को देख अनेक लोग संशय और विस्मय से भर गये। कुछ लोग कुतुहलवश पीछे-पीछे हो गये।

महसेन वन में निर्मित अलौकिक समवसरण। उसकी आभा-प्रभा देखकर इन्द्रभूति दिग्मूढ़ से हो गये।

ओह! ऐसा भव्य प्रासाद! चारों दिशाओं में एक-एक द्वार तथा हर द्वार पर लहराती धर्म पताका।

ऐसा दिव्य.... मनोरम और आकर्षक दृश्य, जिसका वर्णन करना ही असंभव है। शब्दातीत है इसका रूप-स्वरूप।

कुछ ही पलों में इन्द्रभूति परमात्मा महावीर के सम्मुख पहुँच गये। अरे! ये कोई ब्रह्मा है?..... विष्णु है?..... महेश है? या फिर वरुण है? इतना अनूठा सौंदर्य! ऐसा अनुपम ऐश्वर्य? ऐसा अद्वितीय माधुर्य! पर शास्त्रों में ब्रह्मा, विष्णु, महेश और वरुण के जो लक्षण बताये गये हैं, उनमें से तो एक भी लक्षण इस कमनीय काया में नहीं दिख रहा।

फिर ऐसा अप्रतिम रूप, सौंदर्य और तेज किसी सामान्य पुरुष में संभव नहीं है!

तब यह निश्चित ही इन्द्रजालिक है, अन्यथा ऐसा दिव्य-भव्य स्वरूप साक्षात् कैसे हो सकता है?

ओह! अब समझ में आया कि यहाँ क्यों ऐसा ठाठ लगा है और क्यों अपार जनसमूह उमड़ रहा है?

यह सब आँखमिचौली का खेल कहें या इन्द्रजाल का, आखिर तो यह सारा दृश्य छल-प्रपंच का ही परिणाम है। तनिक विस्मित इन्द्रभूति सोचने लगे- मानव भले इस माया से प्रभावित हो जाये, पर देव तो दिव्य-दृष्टि से संपन्न होते हैं। वे भला कैसे इस छल से छले गये होंगे?

अचानक इन्द्रभूति के चिन्तन का चक्र घूमा-

अहा! मुख से छलकती प्रशम रस की धारा!

रोम-रोम से टपकती वीतरागता!

तत्क्षण मनोहारिणी एक योजनगामिनी शब्दावली इन्द्रभूति के कर्ण पटलों से टकरायी। शब्द क्या थे जैसे मिश्री से अनन्त गुणा मधुर! अक्षर-अक्षर जैसे अमृत का घोल, और मालकोश राग में जिन मुख से प्रकट वचनावलि सुरम्य संगीत से अधिक कर्ण प्रिय!

हे इन्द्रभूति! तुम आ गये? कैसे हो? तुम्हारा आगमन शुभ है। स्व व पर, दोनों के लिए श्रेयस्कर है।

सुनकर जैसे इन्द्रभूति चौंके। अरे! ये महावीर तो मेरा नाम भी जानते हैं; पर मैं तो इनसे पहले कभी मिला नहीं। न कभी देखा है, न कभी जाना। तो क्या ये सर्वज्ञ हैं?

ओहोऽऽऽ! मैं भी ये क्या सोच रहा? मेरा नाम भला कौन

नहीं जानता! सारी दुनिया मेरे अप्रतिम बुद्धि-बल और अनूठे यज्ञ-कौशल के समक्ष नतमस्तक है, तब बिना पूछे मेरा नाम बताने में इनकी न कोई महानता है, न कोई सर्वज्ञता। इनकी ज्ञान क्षमता पर विश्वास तब होगा, जब मेरे मन में दबी-छिपी उस शंका को समाहित कर देंगे, जिसे मेरे अतिरिक्त कोई भी नहीं जानता।

यद्यपि मैं समस्त शास्त्रों का अध्येता हूँ तथापि मेरे मन में संदेह है- 'जीव है या नहीं? पंच महाभूतों से जिस शरीर का निर्माण हुआ है, क्या वही जीव है या उसके अतिरिक्त भी किसी शाश्वत आत्म-तत्त्व की सत्ता है?'

इसके साथ-साथ मेरा यह भी निर्णय है कि यदि इनकी सर्वज्ञता सिद्ध हो गयी तो मैं इनके चरणों में अपना जीवन समर्पित कर दूँगा। अहंकार की बंजर भूमि पर नम्रता के फूल खिल उठे।

क्षणान्तर में परमात्मा महावीर की आत्मसिद्ध धीर-वाणी गंभीर गर्जना करती हुई प्रस्फुटित हुई- हे इन्द्रभूति गौतम! मैं तुम्हारे संशय को अच्छी तरह जानता हूँ। तुम्हें संदेह है- जीव है अथवा नहीं?

तुम्हारा यह संदेह वेद और बृहदारण्य उपनिषद् की श्रुति **'विज्ञानघन एवैतेभ्यो भूतेभ्यः समुत्थाय तान्येवानु विनश्यति, न च प्रेत्य संज्ञास्ति...'** पर आधारित है। अर्थात् इन पंच महाभूतों से विज्ञानघन (जीव) उत्पन्न होता है और इसके नष्ट हो जाने पर जीव नष्ट हो जाता है। परलोक जैसी कोई वस्तु नहीं है।

❑ आवश्यक सूत्र (मलयवृत्ति, पत्रांक-313)

12.
शिष्यत्व की पराकाष्ठा

इन्द्रभूति अतीव आश्चर्य में थे।

ओह! जब इन्होंने मेरे मन की शंका को पहचान ही लिया है, तब इनके सर्वज्ञत्व में कोई संदेह शेष नहीं बचता। पर मैं यह तो जान लूँ कि शरीर के अतिरिक्त आत्मा का अस्तित्व किस प्रकार सिद्ध है? प्रभु ने फरमाया- गौतम! इस श्रुति पद का युक्ति संगत अर्थ न कर पाने के कारण ही तुम्हारे मानस में जीव तत्त्व के प्रति भ्रांति उत्पन्न हुई है।

पूर्वोक्त 'विज्ञानघन एवैतेभ्यो....' का वस्तुतः अर्थ यह है कि आत्मा में प्रतिपल नयी-नयी ज्ञान-पर्यायों का जन्म होता है, पर वे शाश्वत नहीं होतीं। नयी पर्यायों का उद्‌भूत होना और पुरानी पर्यायों का विनष्ट होना सदा काल का नियम है।

यदि कोई 'घट' पदार्थ का चिन्तन करता है, तो घट रूप पर्याय का आविर्भाव होता है। उसके बाद पट-पदार्थ का विचार करने पर पट-पर्याय की उत्पत्ति तथा घट-पर्याय का ध्वंस होता है।

यदि पंच महाभूतों के सम्मिश्रण से जीव की उत्पत्ति होती है, तब तो एक घट में भी जीव की उत्पत्ति का अनिष्ट प्रसंग आयेगा।

- घट का निर्माण मिट्‌टी से होता है।
- घट-निर्माण में जल का भी प्रयोग होता है।
- घट को अग्नि में पकाया जाता है।
- खाली घट में वायु और आकाश तत्त्व भी होते हैं, इस

प्रकार पाँचों तत्त्व मिलने पर भी घट से जीव की उत्पत्ति नहीं होती।

इन्द्रभूति करबद्ध हो बोले- भंते! आपका कथन सर्वथा यथार्थ है, संदेह रहित और सम्यग् है।

प्रभु ने दूसरा उदाहरण देकर कहा- एक निश्चेष्ट काया में यद्यपि पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश, पाँचों ही महाभूत पाये जाते हैं, फिर ऐसा कौन सा तत्त्व है; जिसके अभाव में वह शव आँख होने पर भी देखता नहीं, कान होने पर भी सुनता नहीं, नाक होने पर भी सूंघता नहीं। अतः स्पष्टतः कहा जा सकता है कि वह तत्त्व आत्मा ही है, जिसके अभाव में यह शरीर निस्पंद और निश्चेष्ट हो जाता है।

हे गौतम! वेद और वेदांगों में भी जीव तत्त्व का प्रतिपादन उपलब्ध होता है। अतः जीव तत्त्व के संदर्भ में कोई संदेह नहीं हो सकता। वह अनुभूति एवं प्रमाणों द्वारा प्रमाणित ही है।

परमात्मा महावीर की पीयूषवर्षिणी वाणी के वज्र ने इन्द्रभूति के मन में खड़े शंका के शैल को क्षण मात्र में छिन्न-भिन्न कर दिया। संशय की निवृत्ति के बाद इन्द्रभूति के चित्त में सर्वज्ञ महावीर के अनुत्तर ज्ञान में कोई संशय न रहा।

वे चरणों में अंजलिबद्ध हो बोले- भंते! मैं अत्यंत अनुग्रहित हूँ आपसे और आपके वचन वैभव से! शीघ्र ही मुझे दीक्षित करके मेरे उद्धारक बनें।

प्रभु ने उसी समय ईस्वी पूर्व 557 में वैशाख शुक्ला एकादशी के दिन इन्द्रभूति को छात्र परिवार के साथ प्रव्रजित कर अपना प्रथम शिष्य घोषित किया।

❑ आवश्यक चूर्णि

13.
गणधर-स्थापना

विराट् यज्ञ मण्डप में अत्यन्त आतुरता से प्रतीक्षा हो रही थी। सभी की आँखें पुनः पुनः उस राह पर जाकर ठहरती थीं, जहाँ से पंडित इन्द्रभूति गौतम की विजय का संवाद प्राप्त होना था।

पर यकायक उनकी स्वर्णिम आशाओं पर तुषारापात हुआ!

संवाद मिला- 'इन्द्रभूति अपने पाँच सौ शिष्यों के साथ सर्वज्ञ महावीर के चरणों में निर्ग्रन्थ बन गये हैं।'

यह पराजय उनके लघुभ्राता अग्निभूति और वायुभूति को किसी भी स्थिति में स्वीकार्य न थी।

नहीं, यह कभी नहीं हो सकता। मैं अभी जाता हूँ और उस इन्द्रजालिये से भ्राताश्री को छुड़ाकर लाता हूँ।

अग्निभूति क्रोधाग्नि में धमधमाते हुए चल पड़े समवसरण की दिशा में, पर परिणाम तो एक ही होना था। प्रभु के दरबार में आता हर कोई था, पर जाता कोई भी नहीं।

अग्निभूति के मन के शंका-रूप शल्य का उद्धार पल मात्र में हो गया। अपने पंच सहस्र अनुयायियों के साथ अग्निभूति अणगार बन गये।

उनको छुड़ाने के लिये वायुभूति आये, पर परमात्मा को समर्पित हो गये। इस प्रकार एक-एक करके ग्यारह प्रमुख यज्ञाचार्य आते गये और प्रभु के शिष्य बनते गये।

जब ग्यारह ही विद्वान् शिष्य जिनेंद्र चरणों में सर्वात्मना

समर्पित हो गये, तब परमात्मा ने अपने वरदहस्त से उनके शीर्ष पर सौगंधिक रत्न चूर्ण डाला और इन्द्रभूति गौतम आदि को संबोधित करते हुए कहा- मैं तुम सभी को गणधर पद प्रदान करता हूँ। गण का सुव्यवस्थित संचालन करने में तुम पूर्ण सक्षम हो। सत्य का साक्षात्कार करके सत्य-मार्ग का प्रतिबोध दो।

गणधरों की दीक्षा के समय देवगण ने पंच दिव्यों की वर्षा करके अपनी प्रसन्नता एवं धर्म की महिमा प्रकट की।

जिन ग्यारह गणधरों का शिष्य परिवार 4400 की संख्या में था, उनमें प्रथम गणधर इन्द्रभूति गौतम थे। गौतम यद्यपि इन्द्रभूति का गोत्र था, तथापि उनकी प्रसिद्धि गौतम स्वामी के नाम से ही हुई।

❑ आवश्यक चूर्णि

❑ त्रिषष्ठि शलाका पुरुष चरित्र

❑ महावीर चरित्र

14.
भंते! किं तत्तं?

परमात्मा महावीर ने तीर्थ का प्रवर्तन किया।

गौतम आदि को श्रमण बनाया। चंदनबाला आदि को श्रमणी बनाया। उन्हें महाव्रतों का महावैभव प्रदान किया।

श्रावक प्रमुख शंख आदि को तथा श्राविका प्रमुखा सुलसा, रेवती आदि को बारह व्रतों की सम्पदा प्रदान की।

'गणधर' जैसे विशिष्ट पद पर इन्द्रभूति आदि का अभिषेक होने के उपरांत ग्यारह गणधर परमात्मा महावीर के न अति निकट, न अति दूर, ऐसे स्थान पर खड़े रहे।

विनयांजलि प्रस्तुत हुई।

मस्तक विनयावनत हाथ जोड़कर उन्होंने प्रश्न किया- भंते! किं तत्तं? भगवन्! तत्त्व क्या है?

प्रभु ने फरमाया- उप्पन्नेई वा। उत्पन्न होता है।

गणधर गौतम संशयशील हो उठे- प्रभो! यदि उत्पत्ति ही होती रहेगी तो यह सीमित पृथ्वी असीम पदार्थों को अपने में कैसे समाविष्ट कर पायेगी?

जिज्ञासा को समाहित करने हेतु पुनः प्रश्न किया- भंते! किं तत्तं? भगवन्! तत्त्व क्या है?

निराकरण प्रस्तुत हुआ- विगमेइ वा। विनष्ट होता है।

इन्द्रभूति गौतम पुनः जिज्ञासु की मुद्रा में मुखरित हुए। यदि पदार्थ का विनाश होता रहेगा तो सब कुछ समाप्त हो जायेगा, ऐसी

स्थिति में पीछे बचेगा ही क्या? सहज प्रश्न प्रस्तुत हुआ- भंते! किं तत्तं? निराकरण की शैली में शब्दावली प्रस्फुटित हुई- धुवेइ वा। स्थिर रहता है। अब बात समझ में आ गयी। तत्त्व की संबोधि सम्पूर्ण हुई। क्योंकि संसार के सारे पदार्थ उत्पत्तिशील, विनाशशील और ध्रुवपरिणामी हैं।

पर्याय उत्पन्न होती है।

पर्याय नष्ट होती है।

पर स्वभाव स्थिर रहता है। द्रव्य का मूल गुण कभी भी तिरोहित नहीं होता।

- भंते! यह कैसे सम्भव है?

- गौतम! एक घट का विनाश होता है, तब उसके साथ ठीकरी का जन्म होता है; पर घट और ठीकरी में रही हुई मृत्तिका (मिट्टी) दोनों में स्थिर है।

दूध मिटता है और दही का जन्म होता है, पर दोनों में रहा हुआ गोरसत्व ज्यों का त्यों बना रहता है।

कंठहार का विनाश होता है और कंगन की उत्पत्ति होती है पर दोनों दशाओं में स्वर्णत्व स्थिर रहता है।

- भंते! इसका अर्थ तो यह हुआ कि विश्व की सम्पूर्ण व्यवस्था इन तीन तत्वों के आधार पर ही गतिमान है।

- हाँ गौतम! मनुष्य मरकर यदि देव बनता है तब पुरानी पर्याय का विनाश और नूतन पर्याय का आविर्भाव होता है पर दोनों स्थितियों में जीव का जीवत्व ध्रुव और शाश्वत ही रहता है। यदि जड़ चेतन बन जाये अथवा चेतन जड़ बन जाये तो सारी सहज व्यवस्था गड़बड़ा जायेगी।

ग्यारह गणधर सहज मुखरित हुए- कृतज्ञोऽस्मि! कृतार्थोऽस्मि! कृपाप्राप्तोऽस्मि!

अब जैसे एक नये युग का प्रारम्भ होना था।

परमात्मा महावीर के असीम अनुग्रह और कृपा-वत्सलता ने गणधर प्रवरों की बुद्धि के बंद द्वारों को उद्घाटित कर दिया। परिणामतः वे लब्धि के भण्डार बन गये। पदानुसारिणी लब्धि के प्रभाव से मात्र अंतर्मुहूर्त्त में द्वादशांगी के निर्माता बने और संपूर्ण श्रमण संघ में श्रुत अमृत से आचार-विचार की जड़ों को सींचने का भगीरथ पुरुषार्थ निभाने लगे।

- ❑ नन्दी सूत्र
- ❑ त्रिषष्ठि शलाका पुरुष चरित्र
- ❑ तत्त्वार्थ सूत्र
- ❑ आप्त मीमांसा
- ❑ महावीर चरियम

15.
गुणवान् गौतम

समचतुरस्त्रसंस्थान के धारक गणधर गुरु गौतम का बाह्य व्यक्तित्व जितना आकर्षक था, अंतरंग व्यक्तित्व भी उतना ही प्रभावशाली, सहज और प्रमोदजनक था।

- स्फटिक की भांति उनका पारदर्शी जीवन।
- खुली किताब की भांति उनका सहज जीवन।
- मधुबन में खिले पुष्प की भांति सुगंधित जीवन।

गणधर गौतम जाति (मातृपक्ष) सम्पन्न होने के साथ-साथ कुल (पितृपक्ष) सम्पन्न भी थे। सर्वोत्तम वज्रऋषभनाराच संघयण के स्वामी होने से बलवान थे; पर शक्ति का कहीं कोई दुरुपयोग नहीं था।

उत्तम शरीराकृति के धारक थे, अतः उनके अंग-अंग से रूप और लावण्य का रस बहता था पर उनके सौंदर्य में लेशमात्र भी विकार नहीं था।

विनय गुण को उनकी जीवन साधना का चाहे तो निचोड़ कह दें और चाहे तो नींव, पर यह गुण उनके रोम-रोम में राम की भांति समाया हुआ था।

ज्ञान संपदा की अपेक्षा से वे मति, श्रुत, अवधि और मनःपर्यव, इन चार ज्ञानों के स्वामी थे। क्षायिक सम्यक्त्वी होने से उनमें मिथ्यात्व का तिलमात्र भी अंश नहीं था, साथ ही क्रोध-मान-माया और लोभ, चारों कषायों पर वे विजय प्राप्त कर चुके थे।

उनकी वाणी में ओज और मुख पर तेज झिलमिलाता था। जीवन और मृत्यु की कामना से उपरत रहने वाले वे श्रमण श्रेष्ठ थे। उत्कट तप और उत्कृष्ट संयम की साधना में लीन रहने वाले विशुद्ध साधक थे।

करण सित्तरी और चरण सित्तरी का पालन करने में वे प्रज्ञावान् थे।

समता, मृदुता, सरलता, निर्लोभता और लघुता जैसे उत्तम गुणों का पोषण करने में वे निरन्तर प्रयत्नशील रहते थे।

विविध प्रकार के उग्र अभिग्रह धारण करने में एवं उनका परिपूर्ण पालन करने में उत्तम संकल्प के स्वामी थे। चौदह पूर्वों की विपुल ज्ञान-सम्पदा को धारण करने में अतीव कुशल थे। सत्य, शौच, ज्ञान, दर्शन और चारित्र की निर्मलता हेतु निरन्तर प्रयत्नशील रहते थे। विपुल तेजोलेश्या के स्वामी थे।

प्रतिबोध देने में उनकी विचक्षणता का कोई सानी नहीं था।

निश्चय ही गौतम स्वामी इतने अधिक गुणों के धारक, पालक और विस्तारक थे कि उस महापुरुष के जीवन-लेखन में लेखनी अत्यन्त लघु प्रतीत होती है।

इन समस्त गुणों में भी सर्वोत्तम और सर्वोत्कृष्ट गुण था- गुर्वाज्ञा की अखंड आराधना। महावीर उनके रोम-रोम में, पोर-पोर में रमे हुए थे। पल भर के लिये भी वे प्रभु की सन्निधि से दूर नहीं जाते। प्रभु की आज्ञा होने पर अविलंब उसका पालन करते और पुनः प्रभु के उपपात में पहुँच जाते।

❑ भगवती सूत्र, शतक-1

16.
घोर तपस्वी

जब व्यक्ति की सोच बदली जाती है, तब आचरण स्वत: तदनुरूप ढल जाता है।

जब तक इन्द्रभूति गौतम को सम्यग्दृष्टि उपलब्ध नहीं हुई थी, तब उनकी दृष्टि में संसार ही मुख्य था; पर जब परमात्मा की शरण में पहुँचे, तब सारे मिथ्या मल का विसर्जन हो गया।

मिल गयी सही सोच!

मिल गया जीवन का लक्ष्य।

मिल गया आत्मा का पुरुषार्थ।

अब महात्मा गौतम की दृष्टि में आत्म-विशुद्धि का एकमात्र लक्ष्य था। इसी कारण वे प्रव्रजित होने के पहले क्षण से ही उन्होंने स्वयं को द्वादश तप की अग्नि में तपाकर कुंदन बनाने का निश्चय धारण कर लिया। यह उनकी घोर तपश्चर्या का पहला कदम था कि दीक्षा लेते ही उन्होंने भीष्म प्रतिज्ञा धारण की कि मैं जीवन-पर्यन्त छट्ठ तप करूँगा। छट्ठ तप अर्थात् दो दिन उपवास, उसके बाद पारणे में एकासन तप और यह तप जीवन भर निरन्तरता के साथ अखंड रूप से गतिमान रहा।

उनकी विशिष्ट कठोर जीवनचर्या में तप का वैसा ही स्थान था, जैसे पुष्पों में सुवास का तथा शक्कर में मिठास का होता है। इसी कारण वे जीवन भर बेले के साथ अन्यान्य तप की पावक में तपकर आत्मा को पावन बनाने की श्लाघनीय तप-साधना में प्रवृत्त

रहे। गौतम स्वामी पारणे में भी रसगृद्धि एवं स्वाद आसक्ति से सर्वथा विमुक्त थे। शुद्ध, प्रासुक और एषणीय आहार की प्राप्ति होने पर भी उसे निज संयम की तुला पर तोलते और ऐसे पदार्थ कदापि स्वीकार नहीं करते, जिससे संयम का रस निरस हो जाये और संसार का रस सरस लगने लगे।

कर्मों को भस्मीभूत करने में अग्नि के समान गौतम प्रदीप्त तपस्वी थे। विहार में ईर्या समिति से समित गौतम गणधर केश लुंचन आदि समस्त परीषहों के सम्मुख केसरीसिंह के समान परम निर्भीक और पराक्रमी थे। शरीर की शोभा और शृंगार से हमेशा दूर रहने वाले गौतम गणधर मल परीषह के संपूर्ण विजेता थे।

तप के आभ्यन्तर छह प्रकारों से भी उनकी आत्मा अत्यन्त संस्कारित और भावित थी। विनय, वैयावच्च, प्रायश्चित्त आदि गुणों से संयुत गुरु गौतम अतीव स्वाध्याय प्रेमी थे। प्रतिदिन चौदह पूर्वों का पुनरावर्तन करना उनका सहज सद्गुण था।

पहले प्रहर में वे परमात्मा की देशना का मधुर रस पान करते, दूसरे प्रहर में देशना देते और ध्यान-साधना करते।

तीसरे प्रहर में पारणे के दिन प्रभु की आज्ञा प्राप्त कर निराकुल भाव से ग्राम / नगर में गौचरी के लिये जाते तथा अमीर, मध्यम और गरीब, तीनों कुलों से निर्दोष आहार लेकर आते।

तत्पश्चात् अनासक्त भाव से आहार ग्रहण करके प्रभु-आज्ञा के अनुसार पुनः स्वाध्याय की साधना में एकाकार हो जाते।

निष्कर्षतः गणधर गौतम पचास हजार शिष्यों के गुरु होने पर भी परम समर्पित प्रभु भक्त तथा एक आदर्श शिष्य भी थे।

❑ भगवती सूत्र

17.
जिज्ञासा-समाधान

गणधर गौतम न केवल एक शिष्य हैं अपितु एक चिन्तनशील जिज्ञासु भी हैं। उनके इर्द-गिर्द प्रतिक्षण केवल गुरु महावीर हैं।

उनके हर कदम की मंजिल महावीर है तो हर शब्द की आत्मा भी महावीर है।

महावीर से अलग करके उन्हें देख भी नहीं सकते।

यदि फूल और खुश्बू को....

यदि नदी और धारा को....

यदि सूर्य और तेज को....

अलग-अलग कर सकते हैं, तो महावीर से गौतम को अलग कर सकते हैं।

महावीर बिना गौतम अधूरे हैं तो गौतम के बिना महावीर भी अधूरे से ही हैं।

गौतम स्वयं महावीर की भांति महाध्यानी थे। ध्यान के धरातल पर जब चिन्तन के फूल खिलते, शुक्ल ध्यान और धर्म ध्यान के द्वारा बहिर्मुखी द्वार बंद होते, तब मानस में जिज्ञासाएँ प्रस्फुरित होती। तत्काल गणधर गौतम स्वस्थान से उठकर प्रभु के सन्निकट आते, तदुपरान्त उनकी दाहिनी ओर से प्रारंभ करके तीन प्रदक्षिणा देते। नमन-वंदन करने के बाद न अति दूर, न अति समीप उपस्थित होते तथा विनयांजलि ललाट पर लगाकर प्रश्न करते।

कुछ प्रश्न कुतुहलवश होते....।

कुछ प्रश्न श्रद्धा के कारण होते....।

कुछ प्रश्न संशय के कारण होते....।

कुछ प्रश्न जिज्ञासावश होते....।

अलग-अलग विषयों पर लम्बे-लम्बे प्रश्नोत्तर। कषाय, कर्म, धर्म, अध्यात्म, भूगोल, खगोल, साधना, लेश्या, लोक, परलोक, इतिहास, ज्योतिष, विज्ञान, अप्रमाद, मोक्ष, ज्ञान जैसे अनेकानेक सन्दर्भों में गणधर गौतम जिज्ञासा व्यक्त करते और परमात्मा महावीर समाधान फरमाते।

जिज्ञासा से स्फुरित प्रश्नों का सटीक समाधान प्राप्त कर गौतम स्वामी कृतकृत्य हो जाते तथा विनयपूर्वक प्रभु के चरणों में अपनी अंतर्भावना प्रस्तुत करते- एवमेयं भंते! तहमेयं भंते! अर्थात् प्रभो! आपने जो फरमाया है, वह युक्तियुक्त है, सत्य है। मैं उस पर श्रद्धा करता हूँ।

प्रभु और गुरु वचनों पर विश्वास का यह प्रस्तुतीकरण शिष्य के अंतर्मन के संपूर्ण समर्पण की अनुगूंज है और यह अनुगूंज ही आदर्श प्रश्नोत्तर पद्धति का प्रतिबिम्ब है। यद्यपि गुरु गौतम चार ज्ञान के स्वामी और अनेक विद्याओं में पारंगत थे। अतः वे स्वयं हर प्रश्न का उत्तर निज ज्ञान के दर्पण में निहार सकते थे, तथापि उनकी अद्भुत लघुता और विशिष्ट ऋजुता की यह दिव्य परिणति थी कि वे किसी भी शंका के उद्भूत होने पर उसे परमात्मा के चरणों में ही निवेदित करते।

प्रश्न सरल हो या जटिल, जीव-अजीव से संबंधित हो या वर्तमान-भूत-भविष्य काल से संबद्ध हो, अप्रमाद की साधना हो या कर्म फल का चिंतन हो, हर प्रश्न का उत्तर वे भगवान के श्रीमुख

से प्राप्त करके अत्यन्त अहोभाव और कृतज्ञता से भर उठते।

यद्यपि शिष्य गौतम गुरु महावीर से उम्र में आठ वर्ष ज्येष्ठ थे, तथापि प्रश्न वे इस तरह करते जैसे एक मासूम, अबोध और नादान बालक अपनी माँ से किया करता है।

भंते! यह क्या है?

भंते! ऐसा क्यों होता है?

भंते! सत्य क्या है?

भंते! जीवन क्या है?

प्रश्न में गौतम कहते- भंते! भंते!

उत्तर में महावीर फरमाते- गोयम! गोयम!

जैसे ही 'गोयम' शब्द उनके कानों से टकराता, हृदय का तंतु-तंतु झंकृत हो उठता।

परमात्मा महावीर के अंतिम शिष्य धर्मदासगणि 'उपदेशमाला' में गणधर गौतम की अतुलनीय प्रभु-श्रद्धा का व्याख्यान करते हुए कहते हैं-

भद्दो विणीय विणओ, पढम गणहरो समत्त सुयनाणी।
जाणंतो वि तमत्थं, विम्हिय हियओ सुणइ सव्वं॥

भद्रस्वभावी सर्वश्रेष्ठ विनीत प्रथम गणधर समस्त श्रुत के धारक थे, वे अच्छी तरह परमात्मा के हर सूत्रार्थ को जानते थे, फिर भी विनीत होकर इस तरह विस्मित हृदय एवं मन के साथ प्रभु वाणी का श्रवण करते, जैसे वे निपट अज्ञानी हों।

आगमों में महावीर और गौतम के मध्य जिज्ञासा-समाधान की जो एक क्रमिक परम्परा दिखाई देती है, वह स्वयं रहस्यपूर्ण है।

ज्ञानी गुरु गौतम को प्रश्न करने की कोई आवश्यकता न थी

पर वे प्रश्न इसलिये करते कि प्रत्येक श्रोता के मन में जिज्ञासा तो होती ही है, पर श्रोता संकोचवशात् अथवा सामर्थ्य के अभाव में प्रभु से प्रश्न नहीं कर पाता, अतः जिज्ञासु गौतम के हर प्रश्न में बारह पर्षदा का प्रतिनिधित्व उजागर होता है।

परमात्मा महावीर के पुनः पुनः **'समयं गोयम मा पमायए'**, बोध-कथन का अर्थ यह नहीं कि गौतम गणधर प्रमाद करते थे अपितु उनके माध्यम से संपूर्ण श्रोता वर्ग को अप्रमाद का उपदेश देते थे।

गणधर गौतम के प्रश्न, जिज्ञासा-समाधान, शंका-समाधान, विमर्श, चर्चा और संवाद का क्रम इतना लम्बा रहा कि सूर्यप्रज्ञप्ति, चन्द्रप्रज्ञप्ति, जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति आदि आगमों की रचना का आधार मात्र इन्द्रभूति गौतम कृत प्रश्नोत्तर ही है। यहाँ तक कि 36000 प्रश्नों के संकलन रूप भगवती सूत्र में कुछेक प्रश्नों को छोड़कर शेष गौतम कृत जिज्ञासा का ही प्रस्तुतीकरण है। औपपातिक, प्रज्ञापना, राजप्रश्नीय आदि में भी प्रश्नोत्तरों की सुदीर्घ शृंखलाएँ दिखाई देती हैं।

18.
लघुता का उत्तुंग शिखर

गौतम स्वामी स्वयं गणाधिपति थे। उन्होंने हजारों शिष्यों को दीक्षित किया था तथापि उनका संयम में स्वावलम्बन गुण अद्‌भुत था। विशाल शिष्य सम्पदा के स्वामी होने पर भी ऐसा गजब का चारित्रनिष्ठ परिश्रम कि गौचरी के लिये वे स्वयं ही जाते।

परमात्मा महावीर के साथ विचरण करते हुए गौतम गणधर वाणिज्य ग्राम में आये। दिन के तीसरे प्रहर में परमात्मा की अनुज्ञा प्राप्त कर विशुद्ध आहार गवेषणा के लिये ग्राम की ओर प्रस्थान किया।

इधर परमात्मा महावीर के जो दस महाश्रावक थे, उनमें से पहले महाश्रावक आनंद ने श्रावक की ग्यारह प्रतिमाएँ धारण कर कर्म निर्जरा का बीड़ा उठाया। निर्विघ्न ग्यारह प्रतिमाएँ वहन करने के उपरान्त आनंद के मन में एक विशेष भाव उमड़ा कि 'मुझमें अभी भी वीर्य, पराक्रम और पुरुषार्थ शेष बचा है तो क्यों न मैं अनशन की अंतिम आराधना से मृत्यु को महोत्सव बनाने का पुरुषार्थ कर लूँ।' यह सोचकर आनंद ने संथारा ग्रहण कर लिया; और बढ़ते-चढ़ते शुभ परिणामों की धारा इतनी घनीभूत हुई कि अवधि ज्ञान उत्पन्न हो गया।

यह प्रसंग भिक्षाचरी के लिये गमन करते गणधर गौतम को संविदित हुआ। जिज्ञासावशात् वे आनंद श्रावक के गृहांगन में पहुँचे।

ज्योंहि गुरु गौतम का आगमन आनंद ने जाना, उसका हृदय कमल खिल उठा। अत्यन्त विनम्रता से उसने कहा- प्रभो! आपने

इतना महान अनुग्रह किया कि इस दास की कुटिया में पधारे। मेरा विनय-व्यवहार कहता है कि मैं आसन से उठकर आपको वंदन करके भाग्य को अहोभाग्य में परिवर्तित करूँ; पर मुझमें वह शक्ति और पराक्रम नहीं, अतः आप मेरे अविनय को क्षमा प्रदान करें। कहते हुए आनंद की आँखों के कोर आँसुओं से भीग गये।

आनन्द ने प्रश्न किया- भंते! क्या श्रावक को अवधिज्ञान हो सकता है?

- हाँ! हो सकता है।

भगवन्! मुझे भी अवधिज्ञान हुआ है। मैं पूर्व, पश्चिम और दक्षिण दिशा में 500-500 योजन तक लवण समुद्र का क्षेत्र, उत्तर दिशा में चुल्लहिमवंत वर्षधर पर्वत, ऊर्ध्व दिशा में सौधर्म कल्प तथा अधो दिशा में प्रथम नरक तक का क्षेत्र देखता-जानता हूँ।

आनंद सहज रूप से मुखर हुआ पर गौतम गणधर ने नकारात्मक मुख मुद्रा में उत्तर दिया- आनन्द! एक श्रावक को अवधिज्ञान हो तो सकता है पर इतना विशाल नहीं। तुमने अभी-अभी अवधिज्ञान के क्षेत्र की जो बात कही है, वह वस्तुतः भ्रांतिपूर्ण और मृषावाद से प्रेरित है। अतः तुम असत्य भाषण का प्रायश्चित्त ग्रहण करो।

आनन्द विस्मित मुद्रा में बोला- भगवन्! क्या सत्य कथक को भी प्रायश्चित्त लेना पड़ता है?

गौतम बोले- नहीं।

- तो फिर भगवन्! सत्य वक्ता के लिये प्रायश्चित्त का निर्देश करने वाले आप ही आलोचना करें!

आनन्द के प्रत्युत्तर से ज्ञानी गौतम असमंजस में पड़ गये।

स्वज्ञान का उपयोग किये बिना ही वे उल्टे पाँव प्रभु की सन्निधि में पहुँचे और बोले- प्रभो! आलोचना का हकदार मैं, या फिर आनन्द?

- गौतम! आनन्द ने जो कुछ कहा, वह अक्षरशः सत्य है, अतः प्रायश्चित्त के भागीदार तुम हो। जाओ और आनन्द से क्षमा याचना करो।

अब कहीं कोई शंका का अंधेरा न था। महावीर की ज्ञान-ज्योति में सारा तमस् विलीन हो गया।

गौतम स्वामी की लघुता तो देखें कि वे तुरन्त आनन्द के गृहवास की ओर बढ़ चले। उनके मन में यह प्रश्न नहीं आया कि मैं हजारों शिष्यों का स्वामी एक श्रावक से क्षमायाचना कैसे करूँ?

उनकी महानता का शिखर इतना उत्तुंग कि बेले का पारणा किये बिना ही तपती धूप में उलटे पैरों लौटकर उन्होंने आनंद से खेदपूर्वक क्षमायाचना करते हुए लघुता का दिव्य आदर्श उपस्थित किया।

निरभिमानता और नम्रता के शिखर गौतम गुरुवर को सौ सौ नमन करके सूर्य अस्ताचल की ओर बढ़ गया।

❑ उपासक दशांग, अध्ययन-1

19.
प्रभुजी! तुम चंदन, हम पानी

परमात्मा महावीर के प्रति गुरु गौतम के एकनिष्ठ समर्पण का सौंदर्य जितना अद्‌भुत था, निश्छल श्रद्धा का माधुर्य भी उतना ही विशिष्ट था।

इतनी गहरी आत्मिक प्रीति कि महावीर के सिवाय कोई मन को छू भी न सके।

यद्यपि गणधर गौतम पचास हजार शिष्यों के स्वामी थे, पर मन के आसन पर केवल और केवल परमात्मा महावीर ही विराजमान थे। वे चार ज्ञान के स्वामी थे पर परमात्मा के श्रीमुख से प्रश्नों का समाधान पाने में जितना अहोभाव था, उतना अपने ज्ञान से उत्तर पाने में नहीं।

न गणधर होने का उन्हें अभिमान, न गणाधिपति होने का गर्व। हाँ! गण को सुव्यवस्थित रूप से संचालन करने में वे अवश्यमेव कर्त्तव्यनिष्ठ हृदय वाले थे।

भगवान के प्रति ऐसी अप्रतिम प्रीति और अलौकिक भक्ति कि पल भर भी विलग रहने की पीड़ा सह्य नहीं।

मैं जो कुछ हूँ, मेरे प्रभु के कारण हूँ। प्रभु के बिना मैं हूँ ही क्या? जैसे बिना सुगंध का कागजी फूल और बिना प्राण का शरीर। मेरी कामना इतनी ही है कि उनका वरदहस्त मेरे माथे पर हो और श्रद्धा के पुष्प मैं उनके चरणों में चढ़ाता रहूँ।

मीन नीर के बिना कैसे रहे....। ओह! एकाकार ऐसी अद्‌भुत

अनुभूति! प्रभु के चरण, शरण और समवसरण से ऐसा निस्वार्थ प्रेम।

प्रभु के अनन्य राग में जिन्होंने मोक्ष तक को ठुकरा दिया, ऐसे गुरु गौतम! गुरु की प्रीति में जिसने विशाल शिष्य संपदा को बिसरा दिया, ऐसे गुरु गौतम! जिज्ञासा के समाधान में जिन्होंने अपने ज्ञान-कोष को विस्मृत कर दिया, ऐसे गुरु गौतम! निःस्वार्थ समर्पण की सूरत यानि गौतम! महावीर में डूबे मन की मूरत यानि गौतम!

रिश्ता पुराना, फिर भी कितना खुश्बूदार!

हजारों लाखों करोड़ों वर्षों पुरानी मैत्री!

भगवती सूत्र में परमात्मा स्वयं सरस्वती कंठ से फरमाते हैं कि हे गौतम! तेरा-मेरा संबंध चिर संस्तुत है, चिरपरिचित है, चिरसेवित है, चिरप्रीत है।

तेरी मेरी प्रीति चिरकाल से बह रही नदी और धारा की भांति एकत्व और पूर्णत्व से परिपूर्ण रही है।

गौतम! तूं मेरा अनुगामी बनकर चलता रहा है।

हम दोनों दो शरीरों की एक छाया की भांति एक-दूसरे से अभिन्न रहे हैं।

देखते-देखते इसी अवसर्पिणी के तीसरे आरे में स्मृतियों की एक लम्बी छलांग लग गयी।

20.
इतिहास के पन्ने : मरीचि और कपिल

मैं परमात्मा आदिनाथ का पौत्र तथा भरत चक्रवर्ती का पुत्र। वैराग्य रंग से रंजित होकर दीक्षा तो ले ली, पर मेरी सुकुमार काया संयम के कष्टों को सह नहीं पायी।

अब पुनः गृहस्थी बनना जहाँ अपने यशस्वी पूर्वजों की प्रतिष्ठा पर कालिख पोतने जैसा निकृष्ट कार्य था, तो वहीं साधु जीवन के परीषहों को सहना एक तरह से लोहे के चने चबाने से भी दुष्कर कार्य था।

न सहा जा सके, न कहा जा सके। ऐसी स्थिति में क्या करूँ, जब एक तरफ खाई है और दूसरी ओर कुआँ।

मैंने शीघ्र ही अपनी औत्पातिकी बुद्धि का प्रयोग किया, जिससे मेरा जीवन-पथ सुखकर बन सके।

– तो फिर भंते! आपने कौन सा पथ अपनाया?

– गौतम! मैं गृहस्थ तो नहीं बना परन्तु मैंने त्रिदण्डी (परिव्राजक) का वेश धारण कर लिया।

धूप से बचने के लिये हाथ में ले लिया छत्र!

नंगे पाँवों की सुरक्षा के लिए पहन लिये खड़ाऊँ!

थोड़ा शरीर का संस्कार, थोड़ी स्वच्छता और शृंगार।

इतना होने पर भी मैं अच्छी तरह जानता था कि सच्चा पथ तो आदि पुरुष ऋषभदेव का ही है। यह सब चारित्र मोहनीय का कटु परिणाम है। इसलिये समवसरण के ठीक बाहर बनी मेरी कुटिया में

जब भी कोई आता तो उसे मैं मोक्षमार्ग का उपेदश देता। वैराग्य की धारा में नहाकर जब वह दीक्षा लेने को तैयार होता, तब मैं कहता कि सच्चा दरबार तो परमात्मा ऋषभदेव का है। दीक्षा लेनी है तो जिनेश्वर के चरणों का अनुसरण और जिनाज्ञा का अनुपालन करो।

समय बीतता रहा। कितने ही वर्ष बीत गये। मेरे उपदेश में कभी भी क्लेश उत्पन्न नहीं हुआ।

निर्मल था मेरे अंतर का दर्शन!

निर्लिप्त था मेरे भावों का संसार!

निस्पृह था मेरी आत्मा का स्पंदन!

एक बार मैं अस्वस्थ हो गया, पर मुझमें साधुता का अभाव होने से किसी भी निर्ग्रन्थ ने मेरी सेवा नहीं की।

मैं अत्यन्त खिन्न और दीन भाव से राह देखता रहा, पर मेरी आशा नहीं फली। मैंने उस अवस्था में एक बात सोची कि मुझे भी ऐसा शिष्य बनाना चाहिये, जो वृद्धावस्था में मेरी सेवा-सुश्रुषा कर सके।

यद्यपि मैं जिसे भी प्रतिबोध देता, वह परमात्मा के पास श्रमण या श्रावक धर्म में दीक्षित हो जाता; पर एक कपिल नामक जिज्ञासु को परमात्मा का धर्म रास नहीं आया। वह समवसरण से प्रत्यावर्तित हो मेरे पास पहुँचा और खिन्न मन से बोला- गुरुदेव! वहाँ तो मुझे कोई धर्म नजर नहीं आता। भगवान को भला सोने के सिंहासन की क्या जरूरत? वीतराग के दरबार में देवियों का नृत्य गान क्या रागात्मक मनोदशा का परिचय नहीं दे रहा? यदि आपके पास धर्म है, मार्ग है तो दीक्षित कीजिये, वरना मैं तो चला।

बस! यहीं मुझसे गलती हो गयी। शिष्य-लाभ के लोभ ने

मुझे आ घेरा। परमात्मा की वैराग्यवासित परिणति एवं नृत्य गान में प्रभु प्रीति-भक्ति का उद्‌बोधन देने के बजाय मैंने उसकी हाँ में हाँ मिला ली और उसे अपना शिष्य बना लिया।

वह कपिल मुझसे तिल में तेल की भांति सदा जुड़ा रहा। हमारी हार्दिक प्रीति लगातार वर्धन को प्राप्त होती रही। गौतम! क्या तुम बता सकते हो कि वह कपिल अभी कहाँ है?

- नहीं भंते! आप ही इस सत्य का उद्‌घाटन करें।

- गौतम! वह कपिल कोई और नहीं, तुम ही हो। उस भव की विशिष्ट प्रीति पूर्ण परिणति के कारण ही तुम मेरे प्रति अत्यन्त रागात्मक हृदय वाले हो।

- तहत्ति भंते! आपने जो फरमाया है, उस पर मैं श्रद्धा, प्रीति और विश्वास रखता हूँ।

❑ आवश्यक निर्युक्ति

❑ त्रिषष्ठि शलाका पुरुष चरित्र, दसवां सर्ग

21.
स्वामी और सारथी

गौतम! स्नेह की परम्परा के पीछे संस्कारों की एक मजबूत पृष्ठभूमि होती है। शरीर छूट जाता है पर संस्कार नहीं छूटते। नरक छूट जाती है पर भय साथ चलता है।

तिर्यंच भव के बाद भी आहार संज्ञा की प्रबलता अन्य गतियों में दृष्टिगत होती है। राग के संस्कार कभी-कभी एक भव के होते हैं तो बहुत बार चिरसंचित भी होते हैं।

मैं मरीचि था और तूं कपिल। वह स्नेह की आर्द्रता वहीं शुष्क नहीं बनी, अभी तो राग के इस प्रवाह को वीतरागता के अंतिम संगम तक बहते रहना है।

गौतम! मेरे सत्रहवें भव का घटनाक्रम है।

तुंगगिरि की गहन कंदराएँ! एक केसरी सिंह। जिसकी भयावह, भयानक गर्जना से ही पत्ते हिलने बंद हो जाते, जिसको देखकर रोम-रोम में प्रस्वेद कण उभर आते।

निकटस्थ शंखपुर का प्रदेश, त्राहि माम् और हाहाकार से अवनि और अम्बर व्याप्त हो गये। सर्वत्र-सर्वदा सुरक्षा का अभाव! उस पराक्रमी-खूंखार सिंह का ऐसा प्रचण्ड भय कि लोग दिन में चैन से जी नहीं पाते और कितनी ही यामिनियाँ करवटों में बीत जातीं। एक ही डर, आज किसे यमराज का बुलावा आयेगा? आखिर असुरक्षित प्रजाजनों ने अश्वग्रीव की शरण ली। राजन! हमारे प्राण अब आपके हाथों में हैं, आप चाहे तो तारें, चाहे तो मारें।

अश्वग्रीव राजा के दूत का कभी पोतनपुर के राजा रिपुप्रति शत्रु के पुत्रद्वय अचल और त्रिपृष्ठ ने मान भंग किया था। किसी भविष्यवेत्ता ने तो यहाँ तक कहा था कि त्रिपृष्ठ कोई सामान्य युवराज नहीं, वासुदेव है और यह त्रिपृष्ठ ही अश्वग्रीव का काल बनेगा।

अश्वग्रीव को एक तीर से दोनों लक्ष्य साधने का अवसर मिल गया। उसने अपने अधीन राजा रिपुप्रतिशत्रु को आदेश दिया कि वह शीघ्र ही सिंह के त्रास को स्तंभित करे।

युवराज अचल व त्रिपृष्ठ के रहते पिता रिपुप्रतिशत्रु को सिंह से मुकाबला करने का अवसर कहाँ मिलता। त्रिपृष्ठ स्वयं जैसे सिंह के लिये काल बनकर आया था। उसकी रगों में बहती थी साहस और शक्ति की रक्त-धारा।

अधीर राजकुमार में इतना धीरज कहाँ कि वह सिंह के गुफा से बाहर आने की भी प्रतीक्षा करे। वह स्वयं खुले बाजुओं से यम का पैगाम बनकर कंदरा में कूद पड़ा। ओह! एक सुकुमार कोमल युवक और दूसरी ओर दहाड़ता केसरी सिंह।

त्रिपृष्ठ की चुनौती सुनकर सिंह ने जैसे विकराल काल का रूप धारण किया और दिल दहलाने वाली दहाड़ मारता हुआ सामने चला आया। उसका क्रोध आसमान को छू रहा था तो गर्जना पाताल को कंपित कर रही थी; पर त्रिपृष्ठ के मन में तनिक भी चिंता या भय को स्थान नहीं था। वह ऐसे ही संतुलित, समचित्त और निर्भीक खड़ा था।

न्याय का अवतार वह राजकुमार!

'सिंह धरातल पर और मैं रथ पर सवार!'

'सिंह नि:शस्त्र और मेरे हाथ में तलवार!'

नहीं.... नहीं.... ऐसा नहीं हो सकता। यदि मैं जीत गया तो भी मेरी जय घोर पराजय के रूप में ही रेखांकित होगी। संसार तो यही कहेगा कि त्रिपृष्ठ ने निहत्थे पर विजय प्राप्त की। यह वीरता नहीं, महाकायरता होगी।

निहत्था सिंह मुंह फाड़ कर आगे बढ़ा और त्रिपृष्ठ की पराक्रमी बाजुओं का खून खौल उठा। सिंह त्रिपृष्ठ पर हमला करे, उससे पहले नरपुंगव आगे बढ़ा और मुंह फाड़े दहाड़ते शेर के जबड़ों में हाथ डालकर इतनी आसानी से फाड़ दिया, जैसे जीर्ण-शीर्ण वस्त्र को फाड़ दिया हो।

एक तरह से सिंह के आतंक का अन्त हो गया, पर त्रिपृष्ठ के सारथी से एक बात छिपी न रही। वह विस्मय से भरकर देख रहा था कि वनराज का प्राणान्त हो चुका है, पर उसकी आत्मा में कोई टीस या मलाल है; और इसी कारण देह-पिंजर से आत्मा का परलोक गमन सहज नहीं हो पा रहा है।

जैसे सारथी का पोर-पोर करुणा से भीग उठा, वह अत्यन्त प्रेमपूर्ण दृष्टि के साथ उसके समीप ऐसे पहुँचा, जैसे सिंह उसका कोई परिजन हो।

हे वनराज! मैं तेरी पीड़ा को पहचान गया हूँ। तेरी मृत्यु किसी सामान्य प्राणी के हाथों से हुई है। तूं ऐसा ही कुछ सोच रहा है न?

शब्दों के माधुर्य से जैसे सिंह के हृदय में स्नेह के तंतु झंकृत हो उठे। पूर्व जन्म के मैत्री के धागे में बंधा सारथी पुन: मुखर हुआ- हे वनराज! तुझे चिंता करने की कोई जरूरत नहीं। मृत्यु तो

सभी की होती है, उससे न तुझको कोई अवकाश है, न मुझको। फिर तेरी मृत्यु किसी सामान्य प्राणी के हाथों नहीं हो रही। तूं वनराज है तो वह नरराज है। तेरी भांति वह वीर नर सिंह है। अतः दीनता तथा हीनता को छोड़कर प्रेम और निश्चिंतता के साथ नये जीवन की ओर प्रयाण करो।

अब जैसे निरीह सिंह की आत्मा में प्रसन्नता का दीप जला। सारथी के मुख से अंतिम धर्म-मंगल सुनकर वह परलोक की ओर प्रस्थित हो गया।

गौतम! हमारी प्रीत को जो सन्निधि कपिल और मरीचि के भव से मिली थी, उस स्नेहिल सन्निधि का यद्यपि त्रिपृष्ठ भव तक अभाव रहा, परंतु स्नेह के कच्चे पर सच्चे धागे ने हमें अलग नहीं होने दिया। स्नेह और मोह के मजबूत धागे के बंधन में बंधे हम पुनः मिल गये।

मैं मरीचि था और तूं कपिल।

मैं त्रिपृष्ठ था और तूं सारथी।

मैं महावीर हूँ और तूं गौतम।

कभी गुरु-शिष्य का संबंध और कभी मालिक-अनुचर का रिश्ता। गौतम! इस संबंध में अब कभी भी खण्डन नहीं होगा।

चरम जिणेसर इम भणे, गौयम म करिस खेउ!
छेही जई आपण सही, होस्या तुल्ला बेउ॥

(गौतम रास - विनयप्रभोपाध्याय)

गौतम! तुझे खिन्न होने की कोई जरूरत नहीं। अंत में तूं और मैं, दोनों शाश्वत स्थिति में दीप-ज्योति की भांति एकाकार हो जायेंगे, जिसका कभी भी क्षय नहीं होगा।

22.
साधना के अचल सुमेरु

जन्म-जन्म के संस्कारों का ऐसा अप्रतिम परिपाक हुआ कि गौतम, गौतम न रहे। वे महावीरमय हो गये।

महावीरमय बनना इतना सरल कहाँ है? पर जहाँ ममत्व का अग्नि संस्कार हो जाता है, वहाँ आत्मा की भूमि पर एकत्व का फूल सहज ही खिल जाता है।

दीक्षा के साथ ही इन्द्रभूति अपना पाण्डित्य भूलकर उस नम्रता, सरलता और समता के सोपानों पर आरोहण करने लगे, जहाँ से सारे दुर्गुण बहुत पीछे.... नीचे छूट जाते हैं।

एक अहं झुका तो सारे गुण ऊँचे उठ गये।

ज्ञान का मान झुका तो गणधरत्व प्रकट हो गया।

कुल, जाति का गर्व गला तो प्रथम शिष्य होने का गौरव खिला। यह गुरु गौतम की दिव्य साधना का दिव्य चमत्कार था।

हजारों वर्षों से गौतम का नाम हमारी जिह्वा पर, हमारे हृदय में, दूध में घी की भांति समाया हुआ है। वह उनकी उच्च, कलात्मक और सुव्यवस्थित जीवन-शैली का ही परिणाम है।

एक ओर शील और संस्कार उन्हें जन्मना विरासत में मिले थे तो दूसरी तरफ उच्च कुल के कारण कुलीनता, व्यावहारिकता और मधुरता जैसे विशिष्ट गुण विरासत में सहजतः प्राप्त हुए थे।

कुछ जीव जन्म से महान्, पर जीवन से हीन होते हैं। कमल जैसा पुष्प जन्म से भले ही हीन हो, पर जीवन से महान् बनता है।

पर इन्द्रभूति गौतम तो जन्म और जीवन, दोनों से ही अत्यन्त विशिष्ट व्यक्तित्व के स्वामी थे।

दीक्षा लेते ही वे भूल गये कि मैं कुछ हूँ। मौन, ध्यान और श्रुत की साधना उनके जीवन का लक्ष्य बन गयी। दूसरों के जीवन पर दृष्टि केंद्रित करने के बजाय उन्होंने अपने स्वभाव और आचरण को संशोधित-परिमार्जित करने का दृष्टिकोण विकसित किया।

घण्टों तक वे आत्मा की गहराइयों में उतरते और शांति के मोती बटोरने का श्लाघनीय पुरुषार्थ साधते।

यदि आ गया है शीत काल तो वे ठिठुरती रातों में मात्र एक वस्त्र धारण करके वृक्ष के छत्र तले पहुँच जाते और आत्मा और शरीर के भिन्नत्व की साधना के प्रयोगों की प्रयोगशाला बन जाते।

बर्फीली हवाएँ.... सांय सांय चलते पवन के झोंके.... पर महामुनिवर साधना से न चलित होते, न पतित होते।

दोपहर तीसरे प्रहर के तप्त सूर्य की तपन....। जलती धरती .... दहकता आसमान.... हवाओं में जैसे चिंगारियाँ। आदमी घर से और पक्षी घोंसले से बाहर निकलने की तनिक इच्छा न करें, तब प्रधान गणधर खड़े हो जाते खुले आसमान के तले।

ओह! आग के गोले और शोले बरसाता सूरज, परंतु शीतलता की सौम्यता से छलकती गणधर गौतम की गुण गण से विभूषित कमनीय शरीर संपदा!

शरीर से टपकते अमृत सम प्रस्वेद कण जैसे उन्हें अमृत पुरुष की उपाधि से विभूषित करते प्रतीत होते तो शोले भी उनका स्पर्श पाकर ओस-बिन्दु बन जाते। उन ओस कणों पर पड़ती सूर्य की किरणें एक चमत्कार पैदा करतीं। जैसे उनका कायिक वैभव मँहगे

मोतियों से विभूषित हो जाता। वाह! समता के धनी और सिद्धि के धुनी मुनि की अद्‌भुत उपासना अनूठी थी।

स्व प्रशंसा और परनिंदा से मुक्त इन्द्रभूति महावीर के साधुओं में इन्द्र की भांति प्रशंसनीय, सम्मानीय और अभिनंदनीय व्यक्तित्व और कर्तृत्व से संपन्न थे। प्रमाद तथा निरर्थक वार्तालाप से कोसों दूर गौतम को क्षणमात्र का भी दुरुपयोग स्वीकार्य न था।

बाह्य साधना के साथ-साथ आभ्यन्तर साधना हेतु परमात्मा महावीर का निर्देशन निरन्तर उपलब्ध था। वे सर्वदा प्रभु आज्ञा से विचरण करते। परमात्मा के आदेश-निर्देश में विलंब हो सकता था पर गणधर प्रवर के अनुकरण, अनुसरण और अनुपालन की तत्परता में नहीं। प्रतिक्षण कषाय, राग-द्वेष और मोहक्षय की उत्कट साधना के साधक गौतम की 'उग्र तपस्वी, दीप्त तपस्वी, तप्त तपस्वी, मनस्वी, उदार, धीर, घोर गुणवान, घोर ब्रह्मचारी' आदि अलंकरणों से स्तवना-अर्चना शास्त्रकारों ने हजारों स्थानों पर की है।

जहाँ गौतम, वहाँ आनंद, प्रसन्नता और मधुरता का वातावरण। यह इन्द्रभूति की महानता का लक्षण विलक्षण था।

❑ भगवती सूत्र

23.
लब्धि तणा भण्डार

अंगूठे अमृत बसे, लब्धि तणा भण्डार!
श्री गुरु गौतम समरिये, वांछित फल दातार!

गणधर गौतम का जीवन लब्धियों का सुंदर तीर्थराज था। उनके अंगूठे में अमृत का संचार होता था। उस दिव्य अंगुष्ठ का स्पर्श जिस वस्तु से होता, वह अक्षय बन जाती।

इसे उनकी संयम साधना का महा-चमत्कार समझें कि उनके प्रस्वेद कणों का स्पर्श पाकर बहने वाली वायु स्वयं औषधि बन जाती। सूर्य की किरणों को पकड़ कर वे पर्वतों को सहजता से नाप जाते तो आकाशगामिनी विद्या से आकाश में पक्षी की भांति उड़ने की भी क्षमता रखते। वे बिना पाँव भिगोये नदी को पार करने में सक्षम थे तो दूर-दूर रही हुई वस्तुओं को जानने-देखने में भी समर्थ थे।

इतना ही नहीं, उनकी दृष्टि में ऐसा तेज था कि जिस पर एक बार दयामय दृष्टि का आलोक बिखर जाता, वह व्यक्ति सारे रोगों से मुक्त हो जाता। वे स्पर्श करते और भयंकर नाग का विष उतर जाता। ऐसे लब्धि निधान के दर से भला कौन व्यक्ति गरीब या दु:खी अवस्था में लौट सकता था।

अणिमा, महिमा आदि लब्धियों के धारक गुरु गौतम के नाम से ही सारे काम बन जाते।

स्वयं विनयप्रभोपाध्याय ने गौतम रास में लिखा है-

चिन्तामणि कर चढ़ियो आज, सुरतरू सारे वांछित काज।
काम कुम्भ साहु वश हुआ ए।
कामगवी पूरे मन कामिय, अष्ट महासिद्धि आवे धामिय।
सामिय गोयम अणुसरो ए।।

इन्द्रभूति गौतम मनचिन्तित पदार्थ के प्रदायक मूल्यवान चिंतामणि रत्न के समान थे, तो कल्पवृक्ष के समान इच्छितार्थ के दानी भी थे।

काम-कुम्भ और कामगवी के समान इन्द्रभूति गौतम के जाप-नाम स्मरण में ऐसी अद्‌भुत शक्तियाँ थीं कि अष्टसिद्धि और नवनिधि पग-पग पर अवतरित होती।

इन सब लब्धियों से भी महान लब्धि तो यह थी कि वे जिसके माथे पर हाथ रखते, उसके भाग्य का सितारा चमक उठता। गुरु गौतम ने जीवन में 50000 अणगार दीक्षित किये और सब के सब केवलज्ञानी।

केवलज्ञान रूपी अलौकिक लब्धि के स्वामी इन्द्रभूति गौतम के चमत्कार गहन साधना के सहज परिणाम थे।

अद्‌भुत योगी! अप्रमत्त योगी! अनुत्तर योगी! उनकी दिव्य साधना तो साधन और संसार से ऊपर उठकर आत्म-तत्त्व के विश्लेषण की थी। ये सारे चमत्कार तो ठीक उसी प्रकार उनकी साधना की सामान्य परिणति थे, जैसे एक किसान बीज का वपन फसल के लिये करता है, पर फसल के पकने पर घास तो स्वाभाविक रूप से प्राप्त हो जाती है।

जो व्यक्ति जप-तप और त्याग का आचरण केवल और केवल लोकरंजन या मनोरंजन के मलिन लक्ष्य से करता है, अथवा

जो साधना के परिणामस्वरूप यश, मान और साधन की झूठी कामना करता है, वह न केवल दुनिया को ठगता है, अपितु स्वयं को भी छलने का अक्षम्य अपराध करता है। एक दिन उसकी प्रशस्तियों का शिलालेख इस तरह घिस जाता है कि फिर कभी उसके अस्तित्व का बोध भी न हो।

निश्चित ही इन्द्रभूति गौतम समय का वह अमिट हस्ताक्षर हैं, जिसे काल के थपेड़े कभी भी मिटा नहीं सकते।

समय के अविरल प्रवाह में सब कुछ बह जायेगा। नगर, गाँव बन जायेंगे। गाँव श्मशान में बदल जायेंगे। कितने घर, महलों का नामोनिशां नहीं रहेगा। कितनी ही हस्तियाँ और बस्तियाँ नामशेष हो जायेंगी; कभी हवाएँ, हवाओं का रुख बदलेगा.... कभी काल की फिजाएं, फिजाओं का सुख बदलेगा, पर इन्द्रभूति गौतम की गौरवमयी गाथा को काल रूपी दीमक कभी भी चाट नहीं सकेगी। फूल मुरझा जायेंगे.... रंग बिखर जायेंगे पर महायोगी गौतम नामक कमल-पुष्प हमेशा अपनी खुश्बू बिखेरता रहेगा.... श्रमण संस्था को विनय, विवेक और वैराग्य के रंगों से सजाता रहेगा।

महायोगी गौतम सहस्त्रांशु की भांति मानो ज्ञान की रश्मियों से अन्तर्मन के तम को हरने की साधना में प्रयत्नशील थे।

आत्मा की गुफाओं में जहाँ घोर अज्ञानान्धकार छाया हुआ था, उसे जानने का कठोर कार्य भी महावीर के पट्टधर गौतम के लिये अत्यन्त सहज और स्वाभाविक था।

दिव्यदृष्टा इन्द्रभूति गौतम के आलोक में अनेक भव्य जीवों ने जीवन की दृष्टि कर पायी थी; अनेक आत्माओं ने उससे भी आगे बढ़कर मंजिल को प्राप्त किया था।

24.
एक अज्ञात शक्ति का परिचय

आज विदेह देश की भूमि का कण-कण नाच उठा था, अपनी भूमि का सपूत विश्व वंदनीय बनकर लौट रहा था। किसी माँ का बेटा विदेश से कमाई करके वर्षों बाद जब लौटता है, उस माँ के मन की खुशी का कोई पार नहीं होता; वैसे ही कौशल भूमि का सुपुत्र तेरह वर्षों की लम्बी अवधि के बाद आत्मसंपत्ति एवं कैवल्य लक्ष्मी का मालिक बनकर लौट रहा था, तब फिर मातृभूमि का अणु कण प्रसन्नता से भर जाए, इसमें भला अतिशयोक्ति कहाँ?

स्वयं इन्द्रभूति गौतम भी परमात्मा महावीर के साथ-साथ ही थे। सूरज हो और किरण न हो तो समझना, महावीर के अभाव में गौतम के दर्शन न हों। प्रभु के पद चिह्नों का अनुगमन करना उनका सहज स्वभाव था।

अमृत का दान करने वाली प्रपा खुल गयी। ऐसी प्रपा, जो दान करने में रंक और राजा का, अमीर और गरीब का कोई भेद नहीं करती। जिनवाणी का ऐसा दिव्य अमृत, जो शांति और समाधि का प्रसाद बांटता।

भीतर के सारे संतापों को शीतलता में बदलने वाले महावीर के सन्निकट इन्द्रभूति गौतम उपस्थित थे। अमृत वाणी की जाह्नवी में डूबी धर्मप्राण जनता! इतने में गौतम स्वामी के नयन आश्चर्य से चौड़े हो गये। परमात्मा के ठीक सामने खड़ी थी एक महिला। उम्र से जीवन के अंतिम पड़ाव पर उपस्थित।

वह महिला प्रभु को ऐसे निहार रही थी, जैसे चातक मेघ समूह को निहारा करता है और अचानक उसके उर-प्रदेशों से दुग्ध-धारा बहने लगी। पूरे समवसरण का वातावरण विस्मित होकर उस महिला को देख रहा था पर वह महिला मात्र निर्निमेष नयनों से एकटक महावीर को निहार रही थी।

इन्द्रभूति गौतम ने बारह पर्षदा का प्रतिनिधित्व करते हुए पूछा- भंते! यह वृद्ध महिला कौन है? क्यों इसके नयन युगल आनंद के आँसुओं से भर गये हैं? आखिर किस कारण श्वेत दुग्ध-धारा प्रवाहित हो रही है?

- गौतम! यह महिला कोई और नहीं, मेरी माँ है। इस देवानंदा ब्राह्मणी की रत्नकुक्षि में मैं 82 दिन-रात तक रहा हूँ।

इस देहपिण्ड के प्रारंभिक आकार का निर्माण इसी रत्नगर्भा माता की रत्नकुक्षि में हुआ था। आज पुत्र को देखकर मातृ-वात्सल्य के तंतु स्वतः झंकृत हो उठे हैं। यद्यपि वह नहीं जानती कि मैं उसका पुत्र हूँ, पर स्नेह तो संस्कारों का परिणाम है। वहाँ जान-पहचान या काल-क्षेत्र की कोई दीवार नहीं होती।

सकल पर्षदा के सिर जगन्माता के चरणों में नत-विनत हो गयी।

काल के बहते प्रवाह में इन्द्रभूति गौतम ने यह भी देखा कि परमात्मा के पुण्यशाली प्रथम माता-पिता ऋषभदत्त ब्राह्मण और देवानंदा जिनशासन में दीक्षित हो गये। साधना के द्वारा क्रमशः परम पद पर आरोहण करते दम्पति युगल का गौतम गणधर अभिवंदन-अभिनंदन किये बिना न रहे।

❑ भगवती सूत्र

25.
पूर्व परिचित की भूमिका

एक समृद्ध देश की समृद्ध राजधानी। आर्य भूमि के नक्शे पर संस्कारों की सुगंध से सुरभित कौशल देश और उसकी धर्मप्राण राजधानी श्रावस्ती। वहीं पर रहता था एक संन्यासी। कात्यायन गोत्रीय उस स्कंदक संन्यासी के गुरु का नाम गर्दभाल था।

स्कंदक का जीवन पवित्र था। वह सत्य जिज्ञासु और तत्त्व पिपासु था। वह परिव्राजक (त्रिदण्डी) था, उसके पास पात्र, वस्त्र, दण्ड आदि थे। गेरूआ वर्ण के परिधान धारण कर अपने मठ में सहज भाव से सत्य की शोध में तल्लीन रहता था।

उसी नगर में कात्यायन गोत्रीय पिंगलक नामक एक निर्ग्रंथ रहता था। वह परमात्मा महावीर के शासन का अनुयायी और जिनधर्म का आराधक था।

एक दिन वह पिंगलक स्कंदक संन्यासी के मठ में पहुँचा और उसके ज्ञान की गहराई की थाह पाने के लिये पूछने लगा- महोदय! आप लोक, जीव, मोक्ष और सिद्ध जीवों के बारे में क्या जानते हैं? ये अंत वाले हैं या अंतहीन? जन्म-मरण किस कारण बढ़ता है और किस कारण घटता है?

प्रश्न गहन तत्त्व ज्ञान से संबंधित थे। काफी देर तक स्कंदक विचारों के भँवरजाल में गोते लगाता रहा, पर समाधान के मोती न मिले।

शंका, आकांक्षा, जिज्ञासा से भरकर वह मौन भाव से बैठा

रहा। पिंगलक ने दो-तीन बार वे ही प्रश्न दोहराये, पर अनुत्तरित स्कंदक को देख वह वहाँ से प्रस्थान कर गया।

एक बार हुआ ऐसा कि अवनितल को पावन करते हुए परमात्मा महावीर धर्म परिवार के साथ कृतंगला नगरी के छत्रपलाश नामक चैत्य में समवसृत हुए। श्रावस्ती कृतंगला से दूर नहीं थी, अतः अनेक ज्ञानरसिक परमात्म-वाणी का सुधारस पान करने हेतु वहाँ उपस्थित हुए।

इधर स्कंदक को प्रभु के शुभागमन से जैसे एक ज्योतिर्मयी दिशा मिली। जो जिज्ञासाएँ और शंकाएँ मन को संतप्त कर रही थी, और पिंगलक के प्रश्नों का उत्तर न दे पाने का जो शर्मनाक घटनाक्रम हृदय में शूल बन कर चुभ रहा था, उससे मुक्त होने का जैसे एक उत्तम योग प्राप्त हुआ।

सरलात्मा परिव्राजक स्कंदक का मान-अपमान से कोई वास्ता नहीं था। उसे तो मात्र खोज थी आत्म तत्त्व और मोक्ष मार्ग की। वह एक पल का भी विलम्ब किये बिना निज आसन से उठा और वस्त्र, पात्र, उपकरणों को लेकर परमात्मा की पुण्यशाली दिशा में प्रस्थित हुआ।

इधर परमात्मा के केवलज्ञान के आलोक में स्कंदक की भावनाएँ प्रतिबिंबित हो रही थीं। उसके आगमन की प्रवृत्ति को देखकर प्रभु शिष्य गौतम के प्रति मुखर हुए- गौतम! आज तूं तेरे एक पूर्व-परिचित को देखेगा, उससे मिलेगा।

- भंते! आप सत्य के वक्ता हैं, पर कृपा करके बतायें कि किससे मिलूँगा? विनम्रातिनम्र इन्द्रभूति गौतम ने आश्चर्य से पूछा।

- गौतम! आज अभी तूं कात्यायन गोत्रीय स्कंदक से

मिलेगा। वह निज शंकाओं को समाहित करने के लिये यहाँ आ रहा है।

उत्सुक गौतम पुनः प्रश्नायित हुए- तो भंते! वे आपके शिष्य बनेंगे?

- हाँ गौतम! वह श्रमण संघ में दीक्षित होकर आत्मा का कल्याण करेगा। सुनकर गौतम का हृदय आनंद रस से आप्लावित हुए बिना न रहा।

इन्द्रभूति गौतम और स्कंदक परिव्राजक पिछले पाँच भवों से एक दूसरे से परिचित थे। इन पाँच भवों की मैत्री और प्रीति कैसी थी, उसका वृत्तांत आगामी पृष्ठों पर और अधिक स्पष्ट होगा।

❑ भगवती सूत्र

26.
पहला भव : मंगल श्रेष्ठी और सुधर्मा

जम्बूद्वीप का पूर्व महाविदेह क्षेत्र। इसी क्षेत्र में पुष्कलावती विजय में ब्रह्मावर्त नामक देश है, जिसकी राजधानी ब्रह्मपुत्र नगर है।

इसी नगर में रहते थे मंगल नामक श्रेष्ठी। व्यापार और व्यवहार, दोनों से प्रामाणिक। सत्यनिष्ठा, न्याय और शील उनके व्यवहार धर्म का शृंगार था तो धर्म का जतन प्राणों से भी प्यारा था। बारह व्रतधारी मंगल सेठ की राजा और प्रजा, दोनों में स्वच्छ छाप अंकित थी। सम्पन्न परिवार, शीलवती पत्नी और आज्ञाकारी पुत्र। इस प्रकार मंगल के जीवन में सर्वत्र मंगल ही मंगल था। उसी के घर के निकट रहता था सुधर्मा नामक व्यक्ति। नाम की भांति उसका जीवन भी धर्म, नीतिमत्ता और सादगी की आभा से परिपूर्ण था।

एक बार मंगल सेठ के शरीर में ऐसी व्याधि ने जन्म लिया, जो उपचार के बाद कम होने के बजाय बढ़ती ही जाये। मंगल श्रेष्ठी समझ गये कि मेरे जीवन सागर का किनारा सामने ही है। यह सोचकर उन्होंने अनशन स्वीकार कर लिया।

मंगल श्रेष्ठी की भावनाओं में कहीं कोई कषाय या राग-द्वेष का विष न रह जाये, तदर्थ परिवारजन एवं सुमित्र सुधर्मा धर्म सूत्रों के अमृत से निरन्तर श्रेष्ठी के मन को सींचते रहते थे। व्याधि में भी समाधिस्थ रहने वाले मंगल श्रेष्ठी की सजगता, समता और सहनशीलता अद्‌भुत थी। पर भवितव्यता को कुछ और ही मंजूर था।

ग्रीष्म ऋतु के तपते दिन और उष्ण रातें। एक रात तो जैसे

मंगल श्रेष्ठी के जीवन में आर्त्तध्यान की काली रात बन आयी।

मंगल मन को जितना थामे, उतना ही विचलित हो जाये। तृषा परीषह के मारे प्राण जैसे कंठ में आकर अटक गये। असह्य वेदना के मारे मंगल सेठ सोचने लगे- ओह! जिन परिवार जनों को मैंने अतीव स्नेह से पाला-पोसा, वे ही आज इतने क्रूर बन गये कि पानी तक नहीं पिला रहे। मुझसे तो अच्छी समन्दर में रही हुई मछलियाँ हैं, जो हमेशा शीतल जल का पान करने के साथ-साथ उसमें निमज्जन करती हुई संतोष का अनुभव करती हैं। भावनाओं का वर्तुल इतना घना बना कि हृदय के कण-कण से पानी-पानी.... मछली-मछली का स्वरनाद गूंजने लगा और उन्हीं अशुभ अध्यवसायों में मरकर मंगल ने विपाशान्तर नदी में मछली का भव प्राप्त किया।

मंगल श्रेष्ठी ही भविष्य में इन्द्रभूति गौतम और सुधर्मा श्रावक ही भविष्य में स्कंदक परिव्राजक बना।

27.
दूसरा भव : सुधर्मा श्रावक और मत्स्य

अंतिम समय के आर्त्तध्यान के परिणामस्वरूप मंगल श्रेष्ठी की अवनति तो देखो कि वह एक सागर में मत्स्य बना।

मत्स्य की जीविका कितनी हिंसा से परिपूर्ण। **'जीवो जीवस्य भोजनम्'** छोटी-छोटी मछलियों से उदरपूर्ति का पाप-कार्य। वहाँ भला अहिंसा की ज्योति कौन जलाये, पर एक दिन उस मत्स्य ने देखा- एक अद्‌भुत मत्स्य! मत्स्य क्या था, आत्मध्यानी मुनिवर की सुंदर आकृति, जैसे अहिंसा का अमृत बांट रही।

अद्‌भुत.... अलौकिक! यह आकृति तो कहीं देखी है। यह आकार तो जाना-पहचाना है। पर कहाँ.... कब.... कैसे? कितने ही विचारों में डूबा मत्स्य उस साधक आकृति में डूबा तो ऐसा कि मोती लेकर ही बाहर आया। जैसे दही को मथते-मथते नवनीत मिल जाता है, वैसे ही विचारों को मथते हुए जाति स्मरण ज्ञान उत्पन्न हो गया।

अब सब कुछ स्पष्ट था दिन के सूरज की भांति। ओह! मैंने व्रतों की सुंदर आराधना की, पर अंतिम समय में मन पानी में ऐसा एकाकार बना कि मीन का भव मिला।

ओह! एक भूल ने मुझे कहाँ ला पटका। शिखर से गिरा तो ऐसा कि सीधा खाई में जा पड़ा। 'अब इस परम्परा को आगे नहीं बढ़ाना है'। संकल्प का दीप जल उठा और समस्त मछलियों को अभयदान देने का दिव्य निश्चय कर लिया।

इधर सुधर्मा श्रावक जल यात्रा के दौरान जहाज में उपस्थित

था। शान्त सागर ने जैसे भयावह तूफान का रूप धारण कर लिया था। कुछ ही क्षणों में तूफान ने जहाज को निगल लिया। जहाज तार-तार होकर बिखर गया। सारे यात्रियों की भांति सुधर्मा भी अपार जलराशि में लीन होने वाला था कि सुधर्मा का संचित पुण्य उदय में आया। फलस्वरूप मत्स्य के हृदय में स्नेह के तार झनझना उठे। तुरंत सुधर्मा को अपनी पीठ पर बिठा कर किनारे पर पहुँच गया।

मत्स्य अपने संकल्प में अटल था। प्राण के कण-कण से प्रण का पालन करके वह स्वर्ग लोक में देव बना और सुधर्मा भी मृत्यु प्राप्त कर धर्म के प्रभाव से देव बना।

28.
तीसरा भव : कल्याण मित्र

साधर्मिक सेवा और शुभ ध्यान की पुण्य धारा मंगल श्रेष्ठी रूपी मत्स्य को देवलोक के शिखर की ओर ले गयी। उसका नाम था ज्योतिर्माली।

वैभव, सौंदर्य और सामग्री के उत्तम संयोग की प्राप्ति में भी वह ज्योतिर्माली धर्म को नही भूला। **'धर्मो रक्षति रक्षितः'** की उक्ति उसके जीवन में चरितार्थ हो रही थी। वह जिन भक्ति, पूजा और सेवा से अपने जीवन को चमकाने लगा। एक बार ज्ञान से उसने जाना कि पूर्व भव का मेरा स्नेही निकटस्थ देव विमान में ही जीवन-यापन कर रहा है।

परिचय के तंतुओं ने फिर से जीवन वीणा में प्रेम का मधुर संगीत भर दिया। वे एक दूसरे के प्रेरक, पूरक और उन्नायक थे, पर उनमें भौतिकता की प्यास नहीं थी। सच्चे अर्थों में वे धर्म मित्र और कल्याण मित्र थे। पर जीवन ने एक बार फिर से मोड़ लिया। देव रूप सुधर्मा के चरण उत्थान से पतन की ओर बढ़ गये। वह अपनी देवी के बदले स्वर्ग की पण्यांगना कहलाती अपरिगृहिता देवी उर्वशी में आसक्त बन गया। उसकी देवी ने आखिरकार स्वपति के मित्र देव ज्योतिर्माली को अपने दुःखपूर्ण वृत्तांत से परिचित करवाया। पिछले भव की भांति इस भव में भी ज्योतिर्माली ने बखूबी मित्र धर्म का निर्वहन किया और गिरते मित्र देव के कदमों को शील और सदाचार की सोपान पंक्ति पर स्थिर किया।

29.
चौथा भव : त्रिवेणी संगम

राजा हो या रंक, इस जगत में अमर कोई भी नहीं। मृत्यु जीवन का अंतिम आलेख है; और इसका लेखन करना जन्म लेने वाले हर जीव की अनिवार्य विवशता है।

देवलोक का आयुष्य पूर्ण करके ज्योतिर्माली देव ने महाविदेह क्षेत्र की पुष्कलावती विजय में वैताढ्य की वेगवती नगरी में नया भव प्राप्त किया। पिता भी विद्याधर और पुत्र भी विद्याधर। पिता का नाम राजा सुवेग और पुत्र का शुभ नाम वेगवान।

बुद्धि में तीक्ष्ण, सौंदर्य में देवोपम और बल में अप्रतिम पराक्रमी वेगवान क्रमशः योग्यतानुसार युवराज के ताज से अलंकृत हुआ।

इधर पूर्व भव के देव सुधर्मा देव के जीव ने महाविदेह क्षेत्र में धनवंती विजय के तरंगिणी नगर में जन्म लिया। पिता धनदेव और माता धनवती ने पुत्री का नाम धनमाला रखा।

एक बार वेगवान आकाश मार्ग से विचरण कर रहा था कि उसकी दृष्टि लावण्यवती धनमाला पर पड़ी। यौवन से छलकती काया देखकर उसका मन उसके हाथ में न रहा। धनमाला का अपहरण करके वह महल में ले आया। हजार प्रयत्न करने पर भी धनमाला विवाह के लिये राजी नहीं हुई। यह असहमति वेगवान के लिये किसी आघात से कम नहीं थी।

वेगवान का जीवन जैसे वीरान बन गया। न खाने-पीने में

मन, न घूमने-फिरने का आनंद। अब वेगवान विद्याधर न रहकर जैसे चलता-फिरता शव बन गया।

ऐसी स्थिति में वेगवान को संभालने का काम किया उसके परम मित्र धीसखा ने। कल्याण मित्रता का निर्वाह करते हुए उसने कहा- युवराज! वैताढ्य की दीवार पर मैंने पढ़ा है कि जो विद्याधर किसी नारी का अपहरण करके उसके साथ विषय-सुख भोगता है, उसकी सारी विद्याएँ विनाश को प्राप्त हो जाती हैं।

- ओह! मैं यह क्या करने चला था? मेरी बुद्धि भ्रष्ट हो गयी, अन्यथा यह अकार्य मैं कैसे करता!

- मितवा! तूने मुझे पाप की खाई में गिरते-गिरते उबार लिया। मेरा संकल्प है कि धनमाला जब तक स्वेच्छा से मेरी कामना नहीं करेगी, तब तक उसका संस्पर्श करना भी मेरे लिये महान् अपराध है।

त्याग की खुश्बू ने धनमाला को युवराज के प्रति आकृष्ट किया।

उसके रोम-रोम से स्नेह प्रवाहित होने लगा। दोनों प्रीति की डोर में बंध गये; पर विधाता का आलेख कुछ और ही था। हाथ में हाथ रखा और साथ छूट गया। कोई कामासक्त विद्याधर धनमाला का अपहरण करके ले गया। पर, बात तो इससे भी इतनी आगे बढ़ी कि धनमाला स्वयं उस पर-पुरुष में स्नेहाधीन बन गयी।

यह सब घटनाक्रम वेगवान के लिये अत्यन्त पीड़ाजनक और शर्मजनक था।

- ओह! जिसे मैंने अपने प्राणों के कण-कण से चाहा, उसी ने श्वास छूट जाये, इस हद तक विश्वासघात कर अपने प्यार के

सुनहरे लेख पर वैर की कालिख पोत दी। अब तो उसकी कलमुँही सूरत देखना भी मेरे लिये महापाप है।

– अरे, मैं यह क्या सोच रहा?

– संसार सदा से असार ही है। कदम-कदम पर कर्म-बंधन का जाल बिछा हुआ है। अच्छा यही होगा कि इस मायाजाल से निकलकर मैं श्रमण-जीवन के उपवन में पहुँच जाऊँ।

निष्कर्षत: वेगवान के कदम संन्यास के पथ पर नियोजित हो गये।

उसका हाथ थामा आचार्य प्रवर ने और कदम से कदम मिलाकर चला सहृदयी धीसखा।

इधर एक दिन ऐसा आया, जब धनमाला को भी स्वकृत्य पर पश्चात्ताप हुआ और वह भी वैराग्य के रंगों से सज्जित होकर साध्वी बन गयी।

मंगल श्रेष्ठी का जीव ही क्रमश: मत्स्य, ज्योतिर्माली देव और विद्याधर वेगवान बना और वही भविष्य का इन्द्रभूति गौतम!

सुधर्मा का जीव ही क्रमश: देव और धनमाला बना और वही भावी स्कंदक कात्यायन!

इन दोनों जीवों का इस भव में धीसखा मंत्री से मिलन हुआ और यह धीसखा ही भावी निर्ग्रन्थ पिंगलक मुनि बना।

उसी पिंगलक मुनि ने स्कंदक पारिव्राजक से जटिल प्रश्नोत्तर किये और परमात्मा महावीर के सान्निध्य में जाने हेतु संप्रेरक-संप्रेषक बना।

30.
नदी अनेक... धारा एक

संयम की स्वच्छ सरिता!

सरिता में निमज्जन करते वेगवान, धनमाला और धीसखा!

- वेगवान की विशिष्ट विरक्तता।
- धनमाला के अंतर का प्रगाढ़ पश्चात्ताप।
- धीसखा की संयम-निष्ठा एवं स्वाध्याय-प्रियता।

विरक्ति के निर्मल जल में अवगाहन होता रहा, पाप-पंक धुलता रहा और तीनों का भाव-जगत इतना निर्विकार बना कि मनुष्य भव-आयु को परिपूर्ण कर वे तीनों ही आठवें देवलोक में ऋद्धिशाली देव बने।

तीनों देव आयुष्य की परिपूर्णता के उपरान्त वे भरत क्षेत्र के दक्षिण खण्ड में अवतरित हुए।

वेगवान ने गुब्बर ग्राम के विप्रवर्य वसुभूति के गृहांगन में जन्म पाया और इन्द्रभूति गौतम नाम मिला।

धनमाला के जीव ने संवर ग्राम में सिद्ध राजा की रानी समृद्धि की कुक्षि से जन्म पाया और स्कंदक कात्यायन नाम मिला। धीसखा मंत्री के जीव ने चंपा नगरी में तिलक श्रेष्ठी की धर्मपत्नी शीलवती की कुक्षि से जन्म पाया और पिंगलक नाम मिला।

पूर्व भवों के स्नेह का बाग अभी भी हराभरा था। कर्म के द्वारा विरासत में प्राप्त मैत्री और प्रीति के परिणामस्वरूप ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य कुल में जन्म लेकर भी तीनों का मधुर संगम हो

गया।

– भंते! आप भविष्य का कथन कर रहे हैं?

– हाँ, वत्स! मैं निकट भविष्य में घटने वाले इस घटनाक्रम को भली-भांति जान-पहचान रहा हूँ। ...और मैं इस सुंदर सत्य को भी देख रहा हूँ कि तुम तीनों पावन सरिताओं का संगम हो गया है। भिन्न-भिन्न कुल, जाति, गोत्र और संस्कार होने पर भी कहीं कोई भेद नहीं है...। अभिन्न मन.... एक चित्तधारा.... निःस्वार्थ मैत्री।

– 'अच्छा प्रभो! हम तीनों में इतनी गहन मैत्री और प्रीति!' गणधर गौतम आश्चर्य से मुखर हुए।

– गौतम! मैं ज्ञान के दर्पण में देख रहा हूँ कि उस मैत्री के तार ने तीनों को एक ही माला के धागे में पिरोये रखा और वे तीनों ही तीर्थंकर महावीर के (मेरे) श्रमण संघ में दीक्षित हो गये हैं।

31.
धर्म-मित्र का मिलन

समय जैसे थम सा गया।

चित्त जैसे उल्लास से परिपूर्ण हो छलकने लगा।

जब इन्द्रभूति गौतम ने प्रभुश्री के श्रीमुख से सुना कि गौतम! तूं आज तेरे चिर-परिचित व्यक्ति से मिलेगा।

- भंते! आज मैं किससे मिलूंगा?

- गौतम! स्कंदक तापस से मिलेगा।

- भंते! मैं उसे कब और कैसे देखूंगा?

- गौतम! वह संकल्पपूर्वक मेरे पास आ रहा है। अभी वह पथ पर चल रहा है। कुछ ही देर में वह यहाँ तेरे और मेरे नयनों के सामने होगा।

- भंते! क्या वह स्कंदक परिव्राजक आप की सन्निधि में दीक्षित होने योग्य और समर्थ है?

- हां गौतम! वह प्रव्रजित होने में योग्य और सक्षम है।

इतने में गौतम गणधर ने देखा कि पीत वस्त्र धारण किये, लम्बी दाढ़ी-मूंछ वाला कोई सौम्य व्यक्ति सम्मुख चला आ रहा है।

क्षिप्रग्राही मेधा से वे तुरन्त जान गये कि आगन्तुक कोई और नहीं, परमात्मा के द्वारा वर्णित व्यक्तित्व की ही आभा है।

इन्द्रभूति गौतम आसन से खड़े हुए और आगन्तुक के स्वागत में चल पड़े। एक-दूसरे से मिलने की प्रसन्नता उनके मुख मण्डल पर उभर आयी।

भद्र स्वभावी स्कंदक कात्यायन इन्द्रभूति गौतम की व्यावहारिकता, मधुरता और सौम्यता से अत्यन्त प्रभावित हुए। उन्हें विस्मय तो तब हुआ, जब गणधर गौतम ने उनके आगमन का प्रयोजन प्रस्तुत किया और बताया कि यह मेरे सर्वज्ञ भगवंत महावीर की अनुत्तर ज्ञान-मनीषा का ही परिणाम है।

ओह! ऐसा दिव्य ज्ञान! इतनी दुर्लभ मेधा शक्ति! और इतनी शांत-प्रशांत मुखमुद्रा! निश्चित ही ये महाज्ञानी सर्वज्ञ प्रभु ही मेरी आत्मा का उद्धार कर सकते हैं। इनके चरणों में मेरी दुनिया है और इनके हाथों में मेरा सौभाग्य।

- स्कंदक! तेरे मन में प्रश्न है और उनका जवाब पाने के लिये ही तेरा यहाँ आना हुआ है।

सुनकर फिर से एक बार स्कंदक के मन की श्रद्धा ने सुदृढ़ होने का अवसर पाया।

- स्कंदक! तेरे मन में जिज्ञासा है कि लोक अन्त वाला है या अनंत? इस प्रश्न का समाधान यह है कि लोक चार प्रकार का है। द्रव्य की अपेक्षा से लोक एक और क्षेत्र की अपेक्षा से लोक असंख्य कोडाकोडी योजन प्रमाण परिधि वाला तथा लम्बा है। काल की अपेक्षा से लोक ध्रुव, नियत और शाश्वत है; और भाव की अपेक्षा से लोक अनन्त वर्ण-गंध-रस-स्पर्श-संस्थान-गुरू लघु तथा अगुरू लघु पर्याय स्वरूप है। इस प्रकार द्रव्य व क्षेत्र लोक सान्त (अन्त वाला) तथा काल व भाव लोक अनन्त है।

स्कंदक मुखरित हुआ- भंते! कृतार्थोऽस्मि!

आगे प्रभु ने फरमाया- तेरे मन में शंका है कि जीव अन्त वाला है या अन्त बिना का? तो इसका समाधान इस प्रकार होगा-

जीवास्तिकाय अनन्त हैं पर एक जीव जीवास्तिकाय नहीं कहलाता। अतः द्रव्य की अपेक्षा से जीव एक है और उसका अन्त भी होता है। क्षेत्र की अपेक्षा से जीव असंख्य प्रदेशात्मक है। काल की अपेक्षा से जीव नित्य है। अतः अनादि काल से है तथा अनन्त काल तक रहेगा। भाव की अपेक्षा से जीव में ज्ञान, दर्शन, चारित्र और अगुरुलघु रूप पर्याय अनन्त है।

– प्रभो कृतज्ञोऽस्मि।

– स्कंदक! तेरे मन में प्रश्न है कि सिद्धशिला अन्तहीन है या अन्त वाली है?

– द्रव्य से सिद्ध शिला एक है और क्षेत्र से वह पैंतालीस योजन प्रमाण वाली है, अतः अन्त वाली है।

– काल से सिद्ध शिला का अस्तित्व अनादि काल से है और अनन्त काल पर्यन्त रहेगा।

– भाव की अपेक्षा से अनन्त ज्ञान-दर्शन पर्याय रूप होने से अनन्त है।

– भंते! कृतपुण्योऽस्मि।

– स्कंदक! तेरे मन का चौथा संदेह है कि सिद्ध अंत वाले हैं अथवा अनंत?

– केवलज्ञान में चार प्रकार के सिद्ध प्रमाणित हैं। द्रव्य की दृष्टि से देखें तो सिद्ध एक है। क्षेत्र की दृष्टि से सिद्ध असंख्य प्रदेशात्मक हैं। काल की दृष्टि से कोई भी जीव अनादि काल से सिद्ध नहीं होता, अतः वह अनादि नहीं, आदि है। पर सिद्ध बनने के बाद कोई भी पुनः संसारी नहीं बनता, अतः काल की दृष्टि से सिद्ध अनन्त हैं। भाव की दृष्टि से सिद्ध अनन्त ज्ञान, दर्शन और अगुरुलघु

पर्यायात्मक होने से अनंत हैं।

– भंते! धन्योऽस्मि।

– स्कंदक! तेरे मन में उहापोह है कि जीव किस प्रकार मरे तो संसार बढ़ता है और किस प्रकार मरे तो संसार घटता है?

– अनन्त ज्ञान के आधार पर मैंने दो प्रकार के मरण बताये हैं– बाल मरण और पण्डित मरण।

– बाल मरण अज्ञान दशा का सूचक है और पण्डित मरण ज्ञान दशा का उद्‌बोधक है।

– अतिराग और अतिद्वेष के वशीभूत होकर जीव बारह प्रकार से बाल मरण प्राप्त करता है, उससे वह अनन्त बार नरक, तिर्यंच आदि गतियों में महादु:खों को भोगता है, अंततोगत्वा जीव के संसार का वर्धन होता है।

– जब जीव संसार के सुख–दु:ख में समत्व भाव धारण करता है, तब ज्ञान–दशा के आलोक का वरण करता है। ऐसी परिस्थिति में पण्डित मरण प्राप्त करके नरक आदि दुर्गतियों के दु:खों को छेदता है और विपुल कर्मों की निर्जरा करता हुआ अन्त में संसार–समुद्र का किनारा पा जाता है।

इन क्षणों में बिंदु में सिंधु और कण में मण का दान कर रहे परम वात्सल्य के निधान भगवान वर्धमान और समर्पण और श्रद्धा की धारा में निमज्जन कर रहे स्कंदक कात्यायन!

अहो! वाणी में अपूर्व माधुर्य!

अहो! शब्दों में दिव्य गांभीर्य!

अहो! भावों में अद्‌भुत औदार्य!

मेरी शंका के जाल को छेदकर सम्यक्त्व का उजाला देने

वाले ये भगवान ही मेरे तारणहार, मेरे गुरु और मेरे उद्धारक हैं।

तत्क्षण स्कंदक के होंठ हिले, प्रार्थना के स्वर खिले- भंते! कृपया मुझे अपने धर्म संघ में सम्मिलित करें।

अनुमति के पराग-कणों की बरसात से स्कंदक का हृदय सुगंध से भर गया। बारह वर्षों तक संयम व जप-तप के साथ निमग्न होते हुए स्कंदक राजगृही-विपुलाचलगिरि पर निर्वाण को प्राप्त हुए।

इस बात से इन्द्रभूति गौतम परम प्रसन्न थे कि जन्म-जन्म के मेरे मित्र का उद्धार और निस्तार हो गया। इसी प्रकार पिंगलक ने भी परमात्मा की सन्निधि में संयम की संपदा पाई और पूर्व जन्म के मित्र संयमनिष्ठ गौतम गणधर उनकी अनुमोदना का पवित्र कार्य करते रहे।

❑ भगवती सूत्र, 2/1/91

32.
संत मिले... बसंत खिले

जैन धर्म की सरिता का कोई आदि बिंदु नहीं। सदा से बह रही...! सदैव बहती रहेगी। यह सरिता जिस किसी मोड़ से गुजरती है, वहाँ की धरती सरसब्ज बन जाती है। जो भी इस नदी के किनारे पहुँचता है, मीठे पानी को पीता है, वह प्यास को बुझाकर परम तृप्ति और तोष को प्राप्त करता है।

जैन धर्म एक स्वच्छ सरिता... मधुर जल से आपूर्ण। अनादिकाल से बह रहा स्फटिक जैसा पारदर्शी शुद्ध जल। समय बदलता है... व्यक्ति बदलता है... क्षेत्र बदलता है; पर जैन धर्म का अस्तित्व सदा से एक रूप में ही है।

वही अहिंसा का आचरण!

वही सत्य का अन्वेषण!

वही अपरिग्रह का आकर्षण!

जैसे हर अवसर्पिणी में चौबीस तीर्थंकर होते हैं, वैसे ही हर उत्सर्पिणी में भी चौबीस तीर्थंकर।

इस अवसर्पिणी के प्रथम तीर्थपति आदिनाथ और चरम तीर्थंकर परमात्मा महावीर। परमात्मा महावीर से ठीक 250 वर्ष पूर्व पुरुषादानीय पार्श्वनाथ हुए।

जिस प्रकार ऋतुभेद के अनुसार खान-पान, रहन-सहन और वेश-परिवेश में होने वाला परिवर्तन सहज स्वीकार्य होता है, वैसे ही काल के अनुसार व्रत, नियम और मर्यादा की शैली में होने वाला

परिवर्तन सहज स्वीकार्य होता है।

ऐसा ही भेद था परमात्मा पार्श्वनाथ और परमात्मा महावीर की प्ररूपणा में। दोनों ही तीर्थंकर, दोनों श्रमण परम्परा के उन्नायक महापुरुष! एक ही लक्ष्य.... एक ही मार्ग.... एक ही साधना और एक ही चिन्तन, फिर भी बाह्य व्यवस्थाओं में अंतर....।

परमात्मा पार्श्वनाथ के श्रमणों के चार महाव्रत!

परमात्मा महावीर के श्रमणों के पंच महाव्रत!

परमात्मा पार्श्वनाथ के श्रमण पंचरंगी वस्त्र धारण करते और परमात्मा महावीर के श्रमण मात्र श्वेतवर्णीय वस्त्र धारण करते; वे भी अल्प मूल्यवान तथा जीर्ण-शीर्ण।

यह भेद-विभेद मात्र व्यवहार के क्षेत्र में था। विचार, विवेक और विनय में कहीं कोई अंतर नहीं।

आचार के कलेवर अलग-अलग थे; परन्तु संयम, साधना और स्वाध्याय की नियमावलियों की आभा-प्रभा एक जैसी थी।

जिस समय परमात्मा महावीर ने धर्म संघ की स्थापना की, हजारों-लाखों की संख्या में श्रमण और श्रावक दीक्षित किये, उस समय भी परमात्मा पार्श्वनाथ के श्रमण और श्रमणोपासक विद्यमान थे।

अज्ञानता के कारण सामान्य मनुष्य मात्र व्यवहार की साधना को देखता है। निश्चय से अनुप्राणित व्यवहार की गहराई में छिपे लक्ष्य के मोती तक गोते लगा पाना उसके लिये सहज नहीं होता। चाहे-अनचाहे दबी जबान से चर्चा तो प्रायः चलती कि ये भी जैनी साधु-तीर्थंकर के अनुयायी, पर चार महाव्रत धारण करते हैं, रंगीन वस्त्र पहनते हैं; जबकि हमारे परमात्मा मात्र श्वेत वस्त्र की ही

प्ररूपणा करते हैं।

चर्चा का स्पष्टीकरण कौन करे?

इन व्यवस्थाओं के हार्द्र को कौन समझाये?

खुली चर्चा.... स्नेहसिक्त चर्चा और गंभीर चर्चा का अवसर आखिर एक बार आ ही गया....।

परमात्मा पार्श्वनाथ परम्परा के श्रमण प्रवर केशी कुमार विचरण करते हुए क्रमशः श्रावस्ती नगर में पधारे और तिंदुक उद्यान में प्रवासाधीन हुए। केशी स्वामी उदारचेता, सत्य के जिज्ञासु और अप्रमत्त धर्मसाधक थे। उन्होंने बाल्यावस्था में ही श्रमण जीवन स्वीकार किया था, इसलिये शास्त्रकारों ने उन्हें 'कुमार श्रमण' के द्वारा संबोधित किया है।

उसी काल में परमात्मा महावीर, अपने पट्ट प्रभावक शिष्य गणधर इन्द्रभूति गौतम और विशाल शिष्य-प्रशिष्य समुदाय के साथ श्रावस्ती में पधारे और कोष्ठक वन में समवसृत हुए।

विहार के दौरान यदा-कदा प्रभु पार्श्वनाथ और परमात्मा महावीर से शिष्यों का परस्पर सत्संग-समागम होता। एक दूसरे को एक ही राह के राही जानकर वे प्रसन्नता से अत्यन्त गद्‌गद् होते, पर बाह्य आचार में भेद-विभेद देखकर चित्त शंका-कुशंका से भर जाता। आज शंकाओं के सकल मल का प्रक्षालन होना था।

गणधर इन्द्रभूति गौतम की सत्य जिज्ञासा अप्रतिम थी। उनका आचार पक्ष जितना सुदृढ़ था, चिन्तन का धरातल भी उतना ही मजबूत था। वे शरीर से जितने सौंदर्य सम्पन्न थे, सोच के संदर्भ में भी उतने ही पारदर्शी, विनम्र और ऋजु थे। उन्होंने प्रभु की आज्ञा लेकर केशी श्रमण के पास जाने का निश्चय किया, क्योंकि वे 23वें

तीर्थंकर पार्श्वनाथ की परम्परा के प्रतिनिधि थे।

यद्यपि इन्द्रभूति गौतम चार ज्ञान के स्वामी थे, जबकि केशी श्रमण मति, श्रुत और अवधि, तीन ज्ञान से सम्पन्न थे। ज्ञान की अपेक्षा से ही नहीं, पद की दृष्टि से भी गणधर गौतम केशी श्रमण से वरिष्ठ थे। केशी श्रमण परमात्मा पार्श्वनाथ के प्रथम गणधर नहीं अपितु उनके तत्कालीन श्रमण संघ के नायक थे; पर इन्द्रभूति गौतम परमात्मा महावीर के प्रथम गणधर होने के साथ-साथ पचास हजार शिष्यों के स्वामी भी थे।

ज्ञान और पद, दोनों अपेक्षा से गौतम गणधर केशी श्रमण से अधिक समृद्ध थे; पर उनकी नम्रता और निरभिमानता की क्या बात करें! वह तो उनके प्राणों के कण-कण में फूलों में सुवास की भांति बसी हुई थी। इसी कारण पद संपदा, ज्ञान संपदा, शिष्य संपदा का अभिमान उनके खून के एक कतरे में भी नहीं था।

लघुता और मृदुता के पर्याय श्रमण श्रेष्ठ इन्द्रभूति गौतम विशाल शिष्य समुदाय के साथ तिंदुक उद्यान में पधार गये। इसके अतिरिक्त भी भारी जनसमूह उनके चरणों का अनुगमन कर रहा था। कोई उत्कंठा से पहुँचा था तो कोई जिज्ञासा से। कुतुहल, श्रद्धा, शंका जैसी कितनी ही धाराओं से बहता जनसैलाब विशाल सागर का आकार ग्रहण कर रहा था।

इतना ही नहीं, उत्तराध्ययन सूत्र में उल्लिखित है कि उस समय में कितने ही भवनपति, व्यंतर, कुबेर, ज्योतिष्क, किन्नर, गंधर्व, यक्ष, यक्षिणी, वैमानिक आदि देव भी इस दिव्य-भव्य-नव्य चर्चा को सुनने के लिए दृश्य एवं अदृश्य रूप से उपस्थित थे।

केशी श्रमण भी गणधर गौतम की भांति सरलता और

साधना के पर्याय थे। नम्रता और लघुता में वे गणधर इन्द्रभूति से कम पड़े, ऐसा सवाल ही नहीं था। आखिर दोनों मुनीन्द्र थे तो एक ही निर्ग्रन्थ धर्म रूपी कल्पवृक्ष की मुख्य शाखाएँ।

इन्द्रभूति गौतम को दृष्टि पथ में निहारते ही केशी श्रमण का हृदय हर्ष से प्रफुल्लित हो गया। वे आसन से उठे और गौतम गणधर के सम्मुख जाकर उनका तथा सहवर्ती श्रमण समुदाय का सोल्लास स्वागत किया।

– आईये! पधारिये! आपका हार्दिक अभिनंदन है। 'गणधर गौतम' नाम मैंने पहले जरूर सुना है, पर आज उस विनम्र मूर्ति के दर्शन करके मेरे नयन तुष्ट और तृप्त हुए हैं।

केशी श्रमण इन्द्रभूति गौतम की प्रशस्ति में चार चाँद लगाते हुए अतिरिक्त मुखर हुए– यद्यपि आप ज्ञान और पद में मुझसे वरिष्ठ हैं, तथापि सरल प्रकृति, नम्र आकृति और विनय–वृत्ति के वशीभूत हो आप पधारे, यह आपकी आत्म–साधना और उदार मनोवृत्ति का ही अप्रतिम परिणाम है।

इन्द्रभूति गौतम के मुख पर माधुर्य और गांभीर्य पूर्ववत् स्थिर था। उसमें कहीं भी विशिष्टता या वरिष्ठता का गर्व नहीं था। निश्चित ही ऐसी दिव्य भद्रिकता के स्वामी इन्द्रभूति गौतम जैसे महापुरुष ही हो सकते थे।

33.
दो धाराओं का एकीकरण

वातावरण में पूर्ण निस्तब्धता!

उन दो दिव्य धाराओं के संगम को भिक्षु-मण्डल ही नहीं, पूरा वायुमण्डल थमकर निहार रहा था।

दोनों धर्म संघ के महानायक! दोनों सत्य को समर्पित चैतन्य महापुरुष। उनके वार्तालाप में मन की कटुता को कोई स्थान नहीं था। एक-दूसरे को पराजित कर विजय-ध्वज के आरोपण का नहीं, अपितु सत्य का अन्वेषण कर उसे आत्मसात् करना ही उनके संवाद का सुखद लक्ष्य था।

केशी श्रमण ने संवाद को शुरू करते हुए कहा- हे मुनीश्वर गौतम! पार्श्वनाथ और महावीर, दोनों ही जैन धर्म के गौरव पुरुष हैं। तब, दोनों आर्हती परम्पराओं में यह कैसा भेद कि परमात्मा पार्श्वनाथ ने चार महाव्रत रूप चातुर्याम धर्म की प्ररूपणा की, जबकि परमात्मा महावीर पंच महाव्रतों की देशना देते हैं?

- आर्य पुरुष! यद्यपि दोनों परम्पराओं का हार्द एक ही है, तथापि मानवी बुद्धि में काल प्रभाव से आये भेद ने ही इस व्यावहारिक भेद को जन्म दिया है।

- परमात्मा आदिनाथ के साधु प्रकृति से भद्र-सरल, पर बुद्धि से जड़-मंद होते थे। समय की बहती धारा में परमात्मा महावीर तक आते-आते मनुष्य प्रकृति से वक्र और बुद्धि से तार्किक बन गया है। मध्यवर्ती द्वाविंशति तीर्थंकरकालीन मनुष्य स्वभाव से सरल और

प्रज्ञा से तेजस्वी होते हैं।

– मुनीश्वर! पार्श्वनाथ परंपरा के साधु अवक्री, प्रज्ञा संपन्न और समयज्ञ होते हैं। अत: उन्होंने स्त्री को परिग्रह मानते हुए चार महाव्रतों की प्ररूपणा की; पर परमात्मा महावीर ने यह नहीं माना कि आज के साधु इस सत्य को पचा पायेंगे। अत:, उन्होंने स्त्री को नये महाव्रत में स्थान देकर पंच महाव्रतों का प्रवर्तन किया।

– श्रमणेन्द्र! पार्श्वनाथ प्रभु ने रंगीन हो चाहे श्वेत, कीमती हो चाहे अल्प मौलिक, नूतन हो चाहे जीर्ण-शीर्ण, जैसे भी वस्त्र सहज रूप से प्राप्त हो जायें, उनके उपयोग की अनुमति दी। परन्तु, परमात्मा महावीर ने मुख्यत: अचेलक धर्म पर भार दिया। इससे अधिक लज्जा, दंश-मशक परीषह आदि विशिष्ट परिस्थितियों में वस्त्रोपयोग की अनुमति दी; पर, वस्त्र भी ऐसे, जो जीर्ण-शीर्ण, अल्पमौलिक एवं श्वेतवर्णीय हों।

– आर्यप्रवर गौतम! लक्ष्य की अभिन्नता होने पर भी दोनों आर्हती परम्पराओं में यह लक्षण भेद कैसा?

– आर्यवर्य! जैसा कि पूर्व में हम जान चुके हैं कि बुद्धि की जड़ता-तेजस्विता और स्वभाव की वक्रता-सरलता काल के प्रभाव में कमोबेश होती रही है, वही कारण इस भेद के मूल में जानना चाहिये।

– फिर परमात्मा पार्श्वनाथ के अनुवर्ती साधु अच्छी तरह से इस तथ्य को जानते थे कि वस्त्र मात्र लज्जा निवारणार्थ है। उसमें आसक्ति का भला कैसा काम? परन्तु परमात्मा महावीर ने इस परम्परा को आगे चलाने में अनुरक्ति का पूरा खतरा देखा, अत: उन्होंने लक्ष्मण-रेखा खींचते हुए नियम बना दिया कि श्रमण श्वेत

वर्णीय एवं कम मूल्य वाले ही वस्त्र धारण करे।

संयम-वेश संयम-साधना के निर्वाह में उपयोगी और बाह्य व्यवहार का सूचक है। इसमें यह विशिष्टता है कि वह गिरते मन को संभालने का दायित्व भी निभाता है। पर, उनमें राग का प्रयोग वीतरागता की साधना में बाधक तत्त्व है।

श्रमण-साधना का मूल हृदय तो सम्यग्ज्ञान-दर्शन-चारित्र और तप के विकास में ही है, अतः पार्श्वनाथ और वर्धमान प्रभु के जीवन-दर्शन में कहीं कोई भिन्नता नहीं है।

श्रमण केशी कुमार के हृदय में अत्यन्त प्रमोद का भाव अंकुरित हुआ। वे ही नहीं, सम्पूर्ण शिष्य-प्रशिष्य मण्डल इन्द्रभूति गौतम की धीर-गम्भीर वाणी को सुनकर भारी प्रसन्नता का अनुभव कर रहा था। सहज, सरल और स्पष्ट समाधान पाकर उन्होंने प्रश्नावली के क्रम को आगे बढ़ाया।

- महाश्रमण गौतम! हजारों दुश्मनों का सतत आक्रमण हो रहा है, तब आप उन्हें किस प्रकार पराजित करते हैं?

- कुमार श्रमण! एक को जीतने से दूसरे चार पराजित हो जाते हैं तथा इन पाँचों को जीतने पर दूसरे पाँच भी हार जाते हैं?

अबूझ पहेली को सुलझाते हुए इन्द्रभूति गौतम बोले- जब एक दुर्जेय मन को जीत लिया जाता है, तब चार कषाय-शत्रु स्वयमेव वशीभूत हो जाते हैं। इन कुल पाँचों को जीतने से पाँचों इन्द्रियों को आसानी से जीत लिया जाता है।

- हे इन्द्रभूति गौतम! सर्वगुण विनाशी अग्नि हृदय के किसी कोने छिपी हुई है, जो सतत सुख-शांति को भस्मीभूत करती है। हे महापुरुष! तो वह आग कौन सी तथा उसे बुझाने उपक्रम कौन सा?

– श्रमणवर्य! वह महाग्नि है कषायों की, जो अनादिकाल से आत्मा में जल रही है तथा उसे शांत करने का कार्य स्वाध्याय, शील और तप की शीतल धारा करती है। जब शुभ भावों की धारा प्रवाहित होती है, तब सहजतः कषायों का दावानल शांत हो जाता है तथा आत्म-धरातल पर सुख, शांति और समाधि के फूल अनायास खिल उठते हैं।

– हे मुनीन्द्र! इस संसार में सच्चे और झूठे, दोनों रास्ते हैं। अधिकांशतः बुरे रास्ते आत्मा को अपनी ओर खींच लेते हैं। ऐसी भयावह परिस्थिति में आपश्री स्वयं को विपथ से कैसे बचा लेते हैं?

– केशी श्रमण! मुझे बुरे, झूठे और गलत रास्तों से बचाने वाला जिन-प्रवचन है। मैं जिन-उपदेश के दर्पण में देख लेता हूँ कि कौन सा पथ झूठा है और कौन सा सच्चा। इस प्रकार पाखंडियों, अन्य मतावलम्बियों और अन्यतीर्थिकों के मिथ्यामत के दलदल से मैं अपने आपको उबार लेता हूँ।

– हे मुनीन्द्र! मरण और बुढ़ापे के तीव्रवेगी प्रवाह में फँसे जीव को कौन बचा सकता है?

– श्रमणवर्य! धर्म ही एक ऐसा द्वीप है, जो मरण और बुढ़ापे के प्रवाह से विमुक्त करता है, अतः जिनधर्म ही एकमात्र तरणतारण उपाय है।

– हे मुनीश्वर! आप भवसागर में डूबती नैया को कैसे बचाते हैं?

– श्रमण प्रवर! यह संसार एक सागर है, जिसमें जीव रूपी नाविक शरीर रूपी नाव को चला रहा है। संसारी की नाव भव समुद्र में डूब जाती है, क्योंकि उसमें छिद्र होता है; पर महर्षि भव समुद्र

को तिर जाते हैं, क्योंकि उनकी नाव में छिद्र नहीं होता।

प्रश्नोत्तर की पावन भागीरथी बहती रही।

श्रमण संघ उसमें निमज्जन करता रहा।

शंकाओं का मल लगातार धुलता रहा।

चेतना पवित्रता से पारदर्शी होती रही।

इन्द्रभूति गौतम की सत्य, सौम्य और हृदय को छू लेने वाली पवित्र वाणी के प्रकाश में अब संशय का कोहरा न रहा।

ओह! दिशा एक है, दशाएँ भले ही अनेक हों। रास्ते अलग-अलग हुए तो क्या हुआ, मंजिल तो एक ही है। यह सत्य स्वयमेव चमक उठा।

सत्य प्रेमी को किसी भी मार्ग का आग्रह कैसा? संत तो वही जो सत्य का चाहक, जिज्ञासु और अनुगामी हो। सत्य के बसंत में समाधान का फूल खिल उठा तथा शिष्य मण्डल के साथ केशी श्रमण ने भगवान महावीर का मार्ग स्वीकार किया। पंच महाव्रतों का वैभव और प्रतिक्रमण का विज्ञान उनके जीवन का दर्शन बन गया।

दो महानायकों का यह मिलन इतिहास के पन्नों पर स्वर्णाक्षरों में आलेखित हो गया। दो महाधाराओं के इस अद्‌भुत एकीकरण ने संघ-समीकरण का ऐसा सूत्र दिया, जो आज भी जीवन-प्रगति का मूलमंत्र बना हुआ है।

उपरोक्त केशी श्रमण के प्रश्नों और गुरु गौतम स्वामी के समाधान का जो सुंदर-सजीव विवेचन उत्तराध्ययन सूत्र के 23वें 'केशी गौतमीय अध्ययन' में उपलब्ध होता है, वह तन, मन और हृदय को तृप्ति तथा आनंद से परिपूर्ण करने वाला है।

❑ उत्तराध्ययन सूत्र

34.
वैर की परम्परा और स्नेह का बीज

एक गाँव छोटा-सा! शान्त-प्रशान्त वातावरण और संतोष तथा सादगी से जीवन-यापन कर रहे ग्रामवासी। इसी गाँव में एक किसान रहता था। खेती करता और पेट भरता।

उसका हल चलाने का काम था, अतः ग्रामीण लोग उसे हालिक कहकर बुलाते थे। हल हाँके, वह हालिक।

उस कालखण्ड में सर्वज्ञ परमात्मा महावीर भारत भूमि को अपने चरण-आचरण से राजा-प्रजा को जीवन-कल्याण का मार्ग दिखा रहे थे।

एक बार प्रभु विचरण करते हुए उस गाँव के निकटवर्ती क्षेत्र में पधारे। उन्हें सहज अहसास हुआ कि वह हालिक सरल आत्मा है, उसे प्रतिबोध देना चाहिये। वह हल चलाता है, यह उसकी मजबूरी है; परन्तु बैलों के साथ निर्दयता भरा जो दुर्व्यवहार कर रहा है, उससे उसकी हल्की आत्मा पाप कर्मों से भारी बन रही है।

श्रम के कारण थके बैल जब चलने से मना करते हैं, तब उन पर रस्सियों और कोड़ों की मार बरसाता है।

रोग के कारण जब बैलों से काम नहीं होता, तब वह तीक्ष्ण शस्त्र चुभाकर अत्याचार करता है।

ओह! ऐसा भारी पापाचरण! अरे! यह निर्ममता और क्रूरता तो नरक की ही अंधेरी राह दिखाती है।

करुणा की सुवास बरसाते हुए सहजतः वचन-पुष्प खिरे-

इन्द्रभूति गौतम! निकटवर्ती गाँव में रहता है एक हालिक! वह भव्यात्मा और सरलात्मा है। तूं प्रतिबोध देकर उसका कल्याण कर।

इंगिताकार संपन्न, मेधा सम्पन्न इन्द्रभूति गौतम विहार कर उस हालिक के पास पहुँचे तथा धर्म का उपदेश दिया।

ओह! कृपावत्सल! आपने महापाप से उबार कर जैसे दुर्गति में गिरती मेरी चेतना को थाम लिया है। आप ही मेरे जीवन-साथी, आप ही मेरे धर्म-रथ के सारथी।

प्रतिबुद्ध हालिक इन्द्रभूति गौतम के चरणों में दीक्षित हो गये।

गुरु भी प्रसन्न और शिष्य भी प्रसन्न।

इन्द्रभूति की प्रसन्नता का कारण भी ऊँचा था कि एक जीव के जीवन-उद्धार में मैं सहज निमित्त बना। इधर हालिक के मन में विराधना मुक्ति का अति आनंद था।

कार्य-सम्पन्नता के बाद वहाँ रुकने का प्रयोजन न था। इन्द्रभूति गौतम के कदम परमात्मा की चरण-स्पर्शना के लिये विहार के पथ पर नियोजित हो गये।

गुरुदेव! हम कहाँ जा रहे हैं? हालिक की जिज्ञासा प्रकट हुई।

मेरे गुरुदेव परमात्मा महावीर के पास जा रहे हैं। प्रसन्न वदन इन्द्रभूति गौतम मुखर हुए।

अहा! आपके गुरुदेव के पास! मेरे दादा गुरु के पास! जब मेरे गुरुदेव का अतीन्द्रिय ज्ञान इतना उत्कृष्ट है तो मेरे गुरुदेव के गुरुदेव का ज्ञान कितना अतिशय से पूर्ण होगा? वृक्ष की छाँव तले खड़े इन्द्रभूति गौतम ने हालिक से कहा- वत्स! वे मेरे गुरुदेव ही

नहीं, तीनों लोकों के देव भी हैं। वे सर्वज्ञ हैं और मेरे सर्वस्व हैं। उनके निर्विकार सौंदर्य को निरखने के लिये देव ही नहीं, देवेन्द्र भी तरसते हैं। नर और नरपति उनकी पूजा में तत्पर रहते हैं।

जहाँ उनके चरण पड़ जाये, वहाँ धूलि चन्दन बन जाये। उनका संस्पर्श पाकर काँटे फूल बन जाते हैं और पापी पुण्यवान्।

अपने भगवान का गुण-गान करते हुए इन्द्रभूति के रोम-रोम में आस्था की सुवास छा गयी।

अब तो हालिक को उठते-बैठते चैन नहीं था। प्राणों के अणु-अणु में परमात्मा के दर्शन की प्यास छा गयी। आखिर इंतजार की घड़ियाँ पूरी हुईं।

- वत्स! वे रहे मेरे भगवान! सुनकर हालिक मुनि का मन श्रद्धा से छलक उठा।

अहा! मेरे गुरुदेव के गुरुदेव। कदम तीव्र गति से आगे बढ़ते गये। पर, यह क्या हुआ? जैसे ही भगवान के निकट पहुँचे कि प्राणों में तूफान आया। अरे! मेरी झंखना कहाँ गयी? मेरे समर्पण का फूल कैसे मुरझा गया?

वात्सल्य वारिधि के प्रति वैर-ज्वाला ऐसी भड़की कि भक्ति का संसार पल भर में जलकर खाक हो गया।

इन्द्रभूति गौतम की ओर सम्मुख होकर बोला- ये ही हैं आपके भगवान? आपके गुरुदेव? तो नहीं चाहिये दीक्षा, नहीं चाहिये दीक्षा का वेश।

इन्द्रभूति गौतम चौंके। वे कुछ सोचें-बोलें-समझें, उससे पहले हालिक साधु का वेश छोड़कर भाग गया।

अरे! यह क्या हुआ? कुछ पल पहले लहरा रहा समर्पण का

अमृत कुछ पल बाद वैर का जहर कैसे बन गया?

– प्रभो! यह कैसा बदलाव? यह कैसा विषम दृश्य? आपके मुखमण्डल की सौम्य प्रभा जहाँ संतप्त हृदय को आराम देती है, वहीं आपके दर्शन से द्वेष की ज्वाला कैसी? सांप और नेवला, शेर और बकरी, बिल्ली और चूहा, आपके पावन आभा वलय में आकर वात्सल्य और प्रेम से भर जाते हैं, वहीं विश्ववत्सल परमात्मा के सान्निध्य में उदासी, तनाव, चिड़चिड़ेपन और आक्रोश को कैसा स्थान?

– वत्स! पूर्वभव के परिणाम जीवात्मा के साथ-साथ चलते हैं। कभी इस भव के राग-द्वेष इसी भव में उदय में आते हैं तो कभी उनके उदय में हजारों भव... लाखों-करोड़ों वर्ष का भी समय लग जाता है।

– पर भंते! यह कितना विस्मयजनक प्रसंग कि जिस जगवत्सल परमात्मा के दर्शन से महापापी जीव भी महापाप से उबर जाते हैं, तब उस नूतन मुनि हालिक का आपके प्रति वैर-विष कैसा और मेरे प्रति लगाव-भाव कैसा?

– इन्द्रभूति! तूं जिस घटना के संदर्भ में जिज्ञासा व्यक्त कर रहा है, वह बहुत पुरानी पर इतिहास की जुबानी है।

– असंख्य वर्ष पुरानी... कितने ही भव पहले घट चुकी उस घटना में मेरा नाम त्रिपृष्ठ था। एक सिंह... भयंकर वनराज! उसे तूं आतंक का पर्याय ही समझ। मैंने अपनी पराक्रमी भुजाओं के बल पर जीर्ण-शीर्ण वस्त्र की तरह उसे चीर डाला।

अंतिम समय में वह आर्त्तध्यान का शिकार हुआ- अरे! मेरे जैसे शक्तिशाली प्राणी की निशस्त्र मानव द्वारा मौत। हाय! मेरी मृत्यु

बिगड़ गयी। आत्मा में पश्चात्ताप की अतीव आतापना। उसी समय तूं, जो मेरा सारथी था, उसके पास पहुँचा और सांत्वना के स्वरों में शब्दायित हुआ- हे वनराज! तूं चिंता मत कर! तूं जैसे वन्य प्राणियों में वनराज है, वैसे ही तुझे मारने वाला पुरुष ही नहीं, महापुरुष और पुरुष सिंह है। इन शब्दों से आश्वस्त सिंह ने निज प्राणों का परित्याग किया।

लम्बी अवधि बीतने पर भी वैर की अग्नि शांत नहीं हुई। यहाँ तक कि इस चरम भव में भी वह एक बार उत्पात मचा चुका है। मेरी छद्मस्थ अवस्था में गंगा नदी पार करते समय उस सिंह के जीव ने सुद्रंष्ट नागकुमार देव के रूप में उपद्रव किया, पर नाव सकुशल पार हो गयी। बात यहीं खत्म नहीं हुई। सुद्रंष्ट देव ही मरकर कृषक बना। गौतम! इस प्रकार वैर की जहरीली परछाई ने पीछा नहीं छोड़ा और वह क्रमशः सिंह, देव भव से हालिक के भव में भी साथ चली।

पूर्व भवों में उपार्जित द्वेष के कारण हालिक मुझे देखकर भागा और तेरी स्नेहिल सांत्वना के कारण वह तेरे द्वारा प्रतिबुद्ध ही नहीं हुआ, अपितु तेरा विनम्र शिष्य भी बना।

इस समय इन्द्रभूति गौतम के भावों में गहराई गजब की थी- ओह! इस कर्मराज का प्रचण्ड प्रताप-परचा सारी दुनिया पर है। तीर्थंकर या चक्रवर्ती, कोई भी मुक्त नहीं।

ये राग-द्वेष के संवेदन ही वैराग और वीतरागता से दूर रखने वाले शत्रु तत्त्व हैं। समभाव और सद्भाव से जीव परम तत्त्व को उपलब्ध होता है, पर इसके लिये कर्म को जीतना आवश्यक है।

35.
सत्य के दर्शन

परमात्मा महावीर ने अपना सत्रहवाँ चातुर्मास वाणिज्य ग्राम में सम्पन्न किया। चातुर्मास समाप्ति के उपरान्त इन्द्रभूति गौतम आदि के साथ विचरण करते हुए आलंभिका नगरी में पधारे।

इसी नगरी में था एक शंखवन नामक उपवन, जिसमें एक तपस्वी परिव्राजक रहते थे। उनका नाम था- पुद्गल।

जीवन के सत्य की शोध में निरन्तर प्रयत्नशील रहने वाले पुद्गल परिव्राजक ब्राह्मण शास्त्रों के पारगामी विद्वान् थे। विशिष्ट ज्ञान की प्राप्ति उनके जीवन का ध्येय था और इस ध्येय की संपूर्ति में वे तप को अत्यन्त महत्वपूर्ण मानते थे।

वे निरन्तर दो उपवास (बेले) के पारणे पर बेला करके जहाँ अपनी काया को निर्मल बनाने का महाप्रयत्न साध रहे थे, वहीं तपते सूर्य के सामने अचल मुद्रा में स्थित होकर निजदेह को तपाकर कुंदन बनाने की प्रक्रिया में अवस्थित थे। ऐसी घोर-कठोर तपस्या करते हुए एक दिन उनकी साधना सफल हो गयी। परिणाम स्वरूप वे पुद्गल परिव्रजाक ब्रह्मलोक देवलोक पर्यन्त ज्ञान से देखने लगे।

अवधिज्ञान से तपस्वी परिव्राजक जितना देख रहे थे, उतना सही था; परन्तु सम्यक् दृष्टि और सम्यक् प्रज्ञा के अभाव में उन्होंने मान लिया कि मैं सम्पूर्ण सृष्टि का विज्ञाता बन गया हूँ।

अपूर्ण ज्ञान को परिपूर्ण कहना उनके मिथ्या दृष्टिकोण का परिणाम था। लोक में वे अपना प्रदर्शन इस प्रकार करने लगे, जैसे

उन्हें केवलज्ञान हो गया हो।

एक दिन इन्द्रभूति गौतम गौचरी के लिये आलंभिका नगरी में परिभ्रमण कर रहे थे। लोगों के मुख से पुद्गल परिव्राजक के ज्ञान की बात उनके कानों से आ टकरायी।

इन्द्रभूति गौतम यानी करुणा के अवतार परमात्मा महावीर के दूसरे रूप।

सूर्य के प्रकाश और सुमन की सुवास की तरह उनकी करुणा, मैत्री और प्रीति का विस्तार था। किसी भी दुःखी, क्लान्त और पीड़ित व्यक्ति को वे देखते और उनका मन करुणा रस से छलक उठता। बाहर की पीड़ा उन्हें जितनी पीड़ित करती, उसे बहुत ज्यादा भीतर की बीमारी व्यथित करती।

पुद्गल परिव्राजक की मिथ्या दशा उन्हें अन्तर तक झिंझोड़ गयी। उन्हें लगा कि भद्रिक और सत्य के अन्वेष्टा को इस भूल की शूल से उबार लेना चाहिये। पर उबारेगा कौन?

इस प्रश्न के दो उत्तर नहीं हो सकते थे। 'एक मात्र परमात्मा महावीर ही सच्चे पथ-प्रदर्शक बन सकते हैं', यह इन्द्रभूति गौतम के विश्वास का प्रकाश था।

वे गोचरचर्या से निवृत्त होकर परमात्मा की सन्निधि में पहुँचे। करबद्ध होकर विनम्रभावेन प्रश्न किया- भंते! पुद्गल परिव्राजक का ज्ञान पूर्ण है या अपूर्ण?

भगवान ने प्रत्युत्तर में 'अपूर्ण' बताया।

हवा में उड़ती-उड़ती यह बात लोगों के माध्यम से पुद्गल परिव्राजक के कानों में पड़ी। न आवेश, न आग्रह, सरल परिणामी और यथार्थ के जिज्ञासु पुद्गल परिव्राजक ने चिन्तन किया कि

भगवान महावीर, जो सर्वज्ञ के रूप में प्रसिद्ध हैं, उनके चरणों में जाकर मुझे शंका को समाहित कर लेना चाहिये।

परिणामतः प्रभु चरणों में उपस्थित होकर अपनी शंका का निवारण पाकर श्रद्धा तथा समर्पण से भर गये। चेतना में कृतज्ञता के दीप जल उठे। पुद्गल परिव्राजक उन दीयों की रोशनी में अपना पथ-दर्शन कर श्रमण संघ में दीक्षित हो गये। सत्य प्राप्ति का अनहद आनंद उनको महासंत का गौरव दे गया। परिणामतः गणधर गौतम अपने चित्त में प्रमुदित होते रहे।

❑ भगवती सूत्र, 11/12/436

36.
और कैवल्य ज्योति प्रकट हुई

परमात्मा महावीर का सहज आकर्षण। उनका समता रस से भीगा आभा-वलय! करुणा रस से नितरती अमीदृष्टि! परमात्मा जहाँ पधारते, वह वन, उपवन और जंगल मंगल बन जाता।

चार दिन का वात्सल्यपूर्ण सान्निध्य भी जब आत्म-लोकोपकारी बनता; तो जहाँ चातुर्मास का पूरा सामीप्य-सान्निध्य मिलता, वहाँ का बाह्य वातावरण ही नहीं, अन्तर का जगत भी खिल उठता।

राजगृही का पावन धरातल, वहाँ प्रभु के कुल चौदह चातुर्मास सम्पन्न हुए। प्रभु के कुल बयालीस वर्षावासों में से 29वाँ वर्षावास राजगृही में सम्पन्न हुआ। उसके बाद प्रभु का चम्पा की दिशा में विहार हुआ।

चम्पा से पहले परमात्मा के चरण-कमल पृष्ठ चम्पा में पड़े।

पृष्ठ चम्पा का शासक साल राजा। साल राजा ने अपने छोटे भाई महासाल को युवराज पद पर प्रस्थापित किया था, इससे साल के योग्य उत्तराधिकारी के रूप में महासाल उद्घोषित था।

प्रभु की पावन पधरामणी हुई। बादल छाये और मोर न नाचे, चन्द्र खिले और चकोर न मुस्कुराये, ऐसा कब हुआ है!

साल और महासाल की आत्मा में खुशी के फूल महक उठे। उन्हें बहुत अच्छी तरह भान था कि सच्चे अर्थों में जनकल्याण तो धर्मपुरुष ही करते हैं। महाराज-युवराज जग, जीव और जीवन का कितना उद्धार कर पाते हैं, इस तथ्य को हम अत्यन्त निकटता और

घनिष्ठता से पहचानते हैं।

भावोल्लास एवं बढ़ती श्रद्धा के साथ राजा साल परमात्मा की धर्म-पर्षदा में उपस्थित हुए। परमात्मा की सत्य-वाणी सुनकर लगा- ओह! संसार का त्याग किये बिना मुक्ति नहीं और मुक्ति पाये बिना सुख नहीं। चारित्र मोहनीय कर्म के निकट पहुँची भावधारा में एक ही पुकार थी- नहीं चाहिये मुझे धन-वैभव, नहीं चाहिये मुकुट और हार! तत्काल भाव-वेग ने शब्द का वेश धारण किया- प्रभो! मैं प्रव्रजित होना चाहता हूँ।

प्रभु का समुच्चारण था- **मा पडिबन्धं कुणह!** वत्स! शुभ भावनाओं को पूर्ण करने में प्रतिबंध मत करो।

आज्ञा पाकर साल लघुभ्राता के सम्मुख मुखर हुए- मेरे भाई! मैं नहीं चाहता संसार की माया। महासाल! तूं ही इसे संभाल। मैं तो चला संयम-राजा के दरबार।

- नहीं, भाई नहीं। ऐसा मत करो। जब तुम इस विकराल मायाजाल में नहीं फँसना चाहते तो मुझे क्यों फँसा रहे हो? जैसे मैं यहाँ तुम्हारा अनुचर बनकर विचरण करता हूँ, वैसे ही दीक्षा के बाद भी चरणों का अनुगामी बनकर विचरण करूँगा। मुझे मत करो अपने से जुदा। अरे भाई! कभी तन अपनी छाया को अलग करके अकेला रह पाया है? हम दोनों के भले ही तन दो हों, पर जान तो एक ही है.... कहते-कहते महासाल रो पड़ा।

साल ने जब महासाल की उदात्त संयम भावना को परखा तो उनकी दीक्षा हेतु सहमत हो गये, पर राज्य कौन संभालेगा? यह प्रश्न सर्प की भांति फन फैलाये सामने खड़ा था। गहन विचार-विमर्श के उपरांत इसके लिए उन्होंने अपने भाणजे गागली का चुनाव किया।

फिर पृष्ठ चम्पा के राजा के रूप में अपने भाणजे गागली का राज्याभिषेक कर साल-महासाल श्रमण संघ में दीक्षित हो गये।

परमात्मा महावीर का 32वाँ वर्षावास वैशाली में सम्पन्न हुआ। चातुर्मास के उपरान्त राजगृही को पावन करते हुए जब चम्पापुरी पधारे, तब भगवान की आज्ञा लेकर इन्द्रभूति गौतम ने प्रतिबोध देने के लिये पृष्ठचम्पा की ओर विहार किया। मुनिद्वय साल और महासाल भी उनके साथ ही थे।

भाणजे गागली ने गणधर प्रवर के साथ अपने दोनों मामा महाराज का भावभीना स्वागत किया।

प्रवचन कुशल इन्द्रभूति गौतम की वैराग्य सभर वाणी की अमीवर्षा में गागली की आत्मा भीगे बिना न रही और उनके पवित्र चारित्र का ऐसा अद्‌भुत प्रभाव हुआ कि गागली के साथ उनके माता-पिता पिठर और यशोमती भी अणगार पथ के शणगार बन गये। नश्वर महल छूट गया और पंचमहाव्रतों की अनमोल संपदा मिल गयी।

गौतम गणधर का चित्त अत्यन्त प्रमुदित बना, क्योंकि परमात्मा का शासन उनको प्राणों से भी अधिक प्यारा था। उसकी उन्नति में उनकी आत्मिक प्रसन्नता थी।

साल, महासाल, गागली, पिठर और यशोमती, पाँचों का विहार हो गया। इन्द्रभूति गौतम की शीतल छाया में वे चम्पा की ओर बढ़ रहे थे। उनके अणु-अणु में उल्लास की गंगा का पावन प्रवाह गतिमान था।

उनकी चेतना परमात्मा महावीर के दर्शन की उत्कट अभिलाषा और गुरुदेव इन्द्रभूति गौतम की अभिनंदना में एकाकार हो गयी थी।

अहा! परमात्मा का जयवंता अहिंसा धर्म।

वाह! गुरुदेव की प्रबोध-कुशलता।

भावधारा निर्मल बनी तो ऐसी बनी, छलांग लगी तो ऐसी लगी कि वे अंधकार से पूर्ण प्रकाश में आ गये। कषाय और संज्ञा के सारे मलिन परमाणु आत्मा से विलग हो गये और लोकालोक प्रकाशक ज्ञान-ज्योति जल उठी।

इन्द्रभूति गौतम आगे चल रहे थे। उनका रोम-रोम शासन-समर्पण से छलक रहा था। उन्हें पता नहीं था कि अनुगामी पाँचों आत्माएँ परमात्मा बन गयी हैं।

इन्द्रभूति गौतम के चरणों का अनुगमन करते हुए पाँचों अणगार परमात्मा के समवसरण में पहुँचे।

परमात्मा को प्रदक्षिणा के पश्चात् पाँचों केवलज्ञानी प्रभु को वंदना किये बिना सहजत: उस दिशा में बढ़ने लगे, जिधर केवलज्ञानी भगवंतों की पर्षदा थी।

इन्द्रभूति गौतम ने तुरन्त कहा- अरे! तुम किधर जा रहे हो? पहले परमात्मा को वंदना करो, तत्पश्चात् जिधर मुनि पर्षदा है, उधर आगे बढ़ो।

उसी क्षण परमात्मा महावीर ने कहा- गौतम! ऐसा कहकर तूं केवलज्ञानी की आशातना मत कर। ये पाँचों ही सर्वज्ञ बन चुके हैं। आशातना के कारण केवलज्ञानी से क्षमायाचना कर।

इन्द्रभूति गौतम के आश्चर्य और आनंद का किनारा न था। वास्तव में भगवान के शासन का कमाल कैसा! पल में जीव शिव बन गया। कदम ऐसा उठा कि कंकर पल भर में शंकर बन गया।

जिनके रोम-रोम में विनम्रता का वैभव था, ऐसे महापुरुष

इन्द्रभूति गौतम ने तत्क्षण केवलज्ञानी भगवंतों से क्षमायाचना की।

एक चिन्तन उनकी चेतना में उतरा- मैं जिन्हें दीक्षा देता हूँ, वे सभी केवलज्ञानी बन जाते हैं; परन्तु कैवल्य की किरणों ने अब तक मेरी आत्मा का संस्पर्श नहीं किया। चेला शक्कर बन गया और गुरु गुड़ ही रहा। मोक्ष-प्राप्ति की यह झंखना इन्द्रभूति गौतम के हृदय की धड़कन थी तो परमात्मा महावीर का सान्निध्य उनके प्राणों का आश्वासन था।

37.
यात्रा बनी मुक्ति का हस्ताक्षर

इन्द्रभूति गौतम का पावन जीवन सम्पूर्ण श्रमण-संस्था के लिये प्रेरणास्रोत तो था ही, इसके साथ श्रमण-पथ पर अविचल गतिमान रखने में परिपूर्ण सहायभूत भी था।

व्यवहार और निश्चय का अनुभव इन्द्रभूति गौतम के आचार-जगत में प्रतिक्षण प्रतिबिंबित होता था।

परमात्मा की आज्ञा के परिपालन में उनको न यश की अभीप्सा थी, न शिष्य-संख्या का लोभ। उनकी निर्लिप्त आत्मा का आभा-वलय स्फटिक की भांति पारदर्शी था तो आत्मा को कुंदन बनाने वाली तपाग्नि का तेज प्रखर और प्रचण्ड ही नहीं, अति पवित्र भी था।

वस्तुतः इन्द्रभूति गौतम मुक्ति के राही थे। उनकी हर वृत्ति-प्रवृत्ति, वर्तन-प्रवचन और विचार-व्यवहार में एकमात्र निर्बन्ध गति और निराबाध सुख का सहज आकर्षण था।

मुक्ति की संस्पर्शना का अद्‌भुत सुख उन्होंने भगवान के श्रीमुख से अनेकशः बार सुना था, अतः उनके रोम-रोम से आत्म रमणता का सौंदर्य टपकता था।

वे गणधर प्रवर होने पर भी छद्मस्थ थे, जबकि उनके अनेक शिष्य-साधु केवली बन चुके थे। उन्होंने जीवन-काल में पचास हजार साधुओं को दीक्षित किया, वे सब के सब केवली बन गये, पर वे स्वयं केवलज्ञान के लिये रात-दिन का भेद किये बिना झंखना

करते रहे। इतना ही नहीं, उनके दीक्षित अनेक शिष्य सिद्ध लोक के आलोक के भी स्वामी बन चुके थे, पर इन्द्रभूति गौतम को अब तक जब केवलज्ञान न हुआ तो मुक्ति की मंजिल तो बहुत दूर की बात रही।

सद्य घटित साल, महासाल, गागली, पिठर और यशोमती के सर्वज्ञ बनने की घटना से भी इन्द्रभूति गौतम मुक्ति की भावना से भावित होते रहते।

चिंतन की धारा बहती रहती और वे घंटों तक निर्मल धारा में भीगते रहते।

ओह! कितने ही साधु मुझसे उम्र में अल्प और कितने ही दीक्षा पर्याय में अल्प; तथापि सिद्धि के शिखर पर समारूढ़ हो गये।

मैं वहीं का वहीं रहा।

आगे नहीं बढ़ पाया।

ओह! यह कैसा सिद्धि-बिछोह!

मुक्ति का आकर्षण अद्‌भुत, पर कोई ईर्ष्या या जलन की तुच्छ-भावना नहीं।

क्या मैं इस भव में मुक्ति की युक्ति पा सकूँगा...?

क्या मेरी भव-भ्रमणा अभी भी अवशिष्ट है?

प्रश्नों का एक वर्तुल आकार बनता। लम्बा मनोमंथन चलता, पर स्पष्ट प्रत्युत्तर न मिलता।

अरे! शास्त्रकार तो फरमाते हैं कि आत्मसाधक इतना निर्मोह और निर्लिप्त हो जाता है कि उसके अंतर में न तो संसार की झंखना रहती है, न मुक्ति का अभाव कचोटता है।

गणधर इन्द्रभूति ने भी इस स्वभाव दशा को प्राप्त कर लिया

था, तभी तो उनकी समाधि में न भंग पड़ता, न शांति के आस्वादन में खोट आती।

एक बार प्रभु ने फरमाया कि जो साधु स्वलब्धि से अष्टापद तीर्थ की यात्रा कर लेता है तथा एक रात्रि वहाँ विश्राम करता है, वह उसी भव में मोक्षगामी होता है।

मोक्ष-प्राप्ति की झंखना में इन्द्रभूति गौतम को जैसे समाधान की राह मिली।

अपने प्रभु की अनुमति प्राप्त कर वे अष्टापद की यात्रा हेतु चल पड़े। चारण लब्धि के धारक होने से वे आकाशगामिनी विद्या का उपयोग कर महातीर्थ की तलहटी में पहुँच गये।

उसी समय कोडिन्न, दिन्न और सेवाल नामक तीन प्रमुख तापस अपने-अपने पाँच-पाँच सौ शिष्यों के साथ अष्टापद की यात्रा के घोर प्रयत्न में रत थे।

कोडिन्न अपने पाँच सौ शिष्यों के साथ एकान्तर उपवास करते और पारणे में सचित्त कंदमूल का आहार करते; तथापि अब तक अष्टापद के पहले पगथिये पर ही पहुँच पाये थे।

दिन्न अपने पाँच सौ शिष्यों के साथ बेले-बेले पारणा करते और पारणे में शुष्क बने पीले पत्तों का भोजन स्वीकार करते; परन्तु अब तक वे अष्टापद के दूसरे सोपान पर ही पहुँच पाये थे।

सेवाल पाँच सौ शिष्यों के साथ सूखी-अचित्त सेवाल का प्रयोग तेले-तेले की तपस्या के पारणे में करते; परन्तु अब तक आठ सोपानों में से मात्र तीसरे सोपान पर ही पाँव धर पाये थे।

घोर तपाग्नि में उनकी काया का रस सूख चुका था। शरीर में अब न शक्ति थी, न सामर्थ्य था। क्या करें... कैसे शिखर की

यात्रा करें, हर एक के मन में यह एक अबूझ पहेली थी। विषाद और अवसाद के कोहरे में अटके-भटके मन को कहीं भी विश्राम और आराम नहीं मिल पा रहा था।

जब वे शिखर की ओर दृष्टिपात करते तो लगता कि यह यात्रा हमारे लिये प्रायः असम्भव है। इस निर्बल काया से इस निर्मल तीर्थ की स्पर्शना भला कैसे सम्भव होगी? अचानक उनके दृष्टिपथ में आये इन्द्रभूति गौतम!

ओह! कैसा इनका पवित्र और तेजस्वी आभा-मण्डल। काया की कमनीय कान्ति और आँखों की शीतल शान्ति से वे अप्रभावित नहीं रह सके।

वाह! यह श्रमण कितना सौम्य, सुंदर और सप्रमाण अंगोपांगों का स्वामी! इतनी हृष्टपुष्ट काया! चाल में गजराज की मस्ती, दूसरे ही क्षण चिन्तन का चक्र घूमा- महातपस्वी और दुबली-पतली क्षीण काया वाले हम सभी जब शिखर पर नहीं पहुँच पा रहे तो स्थूल शरीर वाले ये साधु भला कैसे ऊपर चढ़ पायेंगे!

अभी तो विचारों का क्रम थमा भी न था कि उनकी शंका-कुशंका के महल को धराशायी करते हुए इन्द्रभूति गौतम सूर्य की किरणों को पकड़ कर जंघाचारण विद्या के बल से तीर्थाधिराज अष्टापद पर्वत पर पहुँच गये। सारे तापस अपने विस्मय को प्रकट करते; इतने में तो वे दृष्टिपथ से अदृश्य हो गये।

तापसों का महाश्चर्य शब्दों में व्यक्त हुआ- ओह! ये महाश्रमण कोई सामान्य योगी नहीं, अपितु शक्तिशाली, लब्धिधारी एवं महायोगी हैं। जो सूर्य-किरणों का आलम्बन लेकर क्षण मात्र में जटिल कार्य को सरलता से सम्पन्न कर सकते हैं, उनकी महाचेतना

में साधना का कितना विशिष्ट पराक्रम होगा। अब तो हमें योगीराज का ही आसरा है। सारे तापस आतुरता से उनके पुनरागमन की प्रतीक्षा हृदय में संजोये बैठे रहे।

अष्टापद पर 'चत्तारि अट्ठ दस दोय' स्वदेह प्रमाण चौबीस तीर्थंकरों के दिव्य-दर्शन कर इन्द्रभूति गौतम का मन आनंद से छलक उठा।

वहाँ पर दर्शनार्थ आये वैश्रमण देव को प्रतिबोध देते हुए उन्होंने कहा- यह जीवन नश्वर है और इसकी शाश्वत सुगंध स्वाध्याय है। स्वाध्याय का अमृत-कुंभमय पुण्डरीक-कण्डरीक अध्ययन प्रदान किया। यह गणधर इन्द्रभूति गौतम की कृपा का ही परिणाम था कि पाँच सौ गाथा प्रमाण इस अध्ययन का प्रतिदिन पाँच सौ बार स्वाध्याय कर उस देवात्मा ने ज्ञान की ऐसी अपूर्व सेवा की कि आगामी काल में वह दस पूर्वधर वज्रस्वामी बना।

आज उनके हृदय में असीम प्रसन्नता का सागर लहरा रहा था कि अष्टापद तीर्थ की स्वलब्धि से सफल यात्रा इस बात को परिपुष्ट कर रही थी कि इन्द्रभूति गौतम का यह चरम भव है। भव यात्रा से त्राण देने वाली अष्टापद की यात्रा सिद्धपद-प्राप्ति के प्रपत्र पर साधना के हस्ताक्षर कर चुकी थी।

38.
भाव मुनिधर्म का अध्याय

इन्द्रभूति गौतम का हृदय अष्टापद पर विराजमान चतुर्विंशति तीर्थंकरों के दर्शन कर निजानंद से छलक उठा।

सारी शंकाएँ निर्मूल हो गयी। अष्टापद की अमरयात्रा ने उन्हें अमरता का वरदान दे दिया।

परमात्मा आदिनाथ की निर्वाण भूमि, उनके पावन परमाणुओं से पवित्र बनी धरा का संस्पर्श हर्ष की धारा बहा रहा था।

उसी समय इन्द्रभूति गौतम ने भरत चक्रवर्ती द्वारा निर्मित-स्थापित चौबीस तीर्थंकरों की **'जयउ सामिय'** सूत्र से अर्चना की। यह सूत्र-अभिवंदना उनकी आत्मनिष्ठा की निर्मल परिणति थी।

जब इन्द्रभूति गौतम अष्टापद तीर्थ की स्तवना की गंगा में डुबकी लगा रहे थे, तब वहाँ पर तिर्यग् जृंभकदेव, विद्याधर आदि भी उपस्थित थे।

इन्द्रभूति गौतम ने सहज ही धर्मोपदेश में मुनि-स्वरूप की व्याख्या करते हुए कहा- मुनि का जीवन श्रम का जीवन है। वह काया को किराया देता है, पर तोल-तोल कर।

वह भोजन शरीर को देता है पर संयम की शर्त पर, जब किराये की दुकान से किसी लाभ की स्थिति नहीं दिखती, तब वह अनशन करके आत्मपथ को प्रशस्त करता है।

व्याख्या घुमावदार थी, प्रवचन स्पष्ट था, शैली निर्भीक थी और वाणी श्रोताओं के हृदय-कमल को विकसित करने वाली थी।

इर्द-गिर्द की सम्पूर्ण व्याख्या में मुनि-चर्चा का विश्लेषण करते हुए वे मुखर हुए- मुनि की भिक्षाचर्या उसके साधक जीवन की महत्वपूर्ण प्रक्रिया है। भिक्षु जाता है घर-घर और रूखा-सूखा, बचा-खुचा, ठण्डा-निरस भोजन लाकर संयम जीवन की सुखद-मधुर यात्रा सम्पन्न करता है। ऐसे में स्वादिष्ट, गरिष्ठ, मधुर, मनभावन और इच्छित सामग्री का जहाँ त्याग हो, वहाँ भला शरीर और स्नेह का संपोषण कैसे होगा?

साधु शरीर से तपस्वी दिखता है।

साधु तन को मात्र वेतन देता है।

साधु काया की मोह-माया को छोड़ता है।

निर्मल आत्मा के लिये निर्मल तप करता है।

इससे भले ही देह-कान्ति निर्बल हो जाये; पर चेतना में चिन्तन की चाँदनी प्रतिक्षण सौम्यता, शीतलता और सद्भावना का प्रकाश देती रहती है।

उस समय श्रोतावर्ग में शक्र का दिशापालक वैश्रमण देव (शीलांकाचार्य के अनुसार गंधर्वरति नामक विद्याधर) भी उपस्थित था। उसे इन्द्रभूति गौतम का प्रवचन सुनकर मन ही मन हँसी आ गयी। उसकी हँसी में व्यंग्य और कटाक्ष का पुट था।

इसका कारण यों बना कि इन्द्रभूति गौतम शरीर-सम्पदा से परिपूर्ण सम्पन्न थे। गजराज की भांति की उनकी मस्त चाल देखने वाले को आकर्षित किये बिना नहीं रहती।

यद्यपि इन्द्रभूति गौतम का जीवन त्यागमय और चित्त वैरागमय था। दीक्षा के प्रथम क्षण से ही वे छट्ठ के पारणे छट्ठ तप करने का अभीष्ट सिद्ध कर रहे थे और पारणे में भी एक बार ही आहार

स्वीकार करते थे। इतना ही नहीं, आहार में भी सीमित, सामान्य और शुष्क द्रव्य ही ग्रहण करते थे; तथापि उनके मुख की कान्ति, शरीर का सौष्ठव और वर्ण का आकर्षण अनुपम था। इन सबका कारण भी था कि वे सदैव प्रसन्न, सरल और सहज जीवन जीते थे। आचार में आक्षेप नहीं, विचार में विक्षेप नहीं और साधना में संक्षेप नहीं। निष्कर्षत: कहें तो साधना, उपासना और तपाराधना का पूर्ण निरतिचार पालन करने पर भी उनकी देह सुंदर और हृष्ट-पुष्ट थी। वृद्धावस्था होने पर भी उनके दो नयन किसी झील के दो कमल की भांति मन को तुष्ट करने वाले थे। मुख पर वृद्धत्व की झुर्रियाँ या शुष्कता नहीं, अपितु स्वस्थ, स्वच्छ और सुंदर जीवन-शैली की आभा छलकती थी।

वैश्रमण देव नकारात्मक सोच का शिकार बना विचार कर रहा था कि मुनिवर कह रहे हैं कि मुनि तन से निर्बल और मन से निर्मल होते हैं; पर यहाँ तो **'परोपदेशे पाण्डित्यं'** की उक्ति अभिव्यक्त हो रही है।

यदि ये मुनि तपस्वी होते तो यों सबल, स्थूल और समृद्ध देह-सम्पदा के स्वामी न होते। लगता है ये प्रवचन में कुशल हैं, पर आचरण में विफल हैं।

इन्द्रभूति गौतम वैश्रमण देव के चिंतन का दायरा बिना कहे ही जान चुके थे, क्योंकि वे मन:पर्यवज्ञान के स्वामी जो थे।

उन्होंने वैश्रमण देव की शंका को जड़मूल से उखाड़ते हुए कहा- देवानुप्रियों! भाव मुनित्व का सूचक न तो स्थूल शरीर होता है, न दुर्बल शरीर। सच्चा भाव मुनित्व तो वही होता है, जहाँ इन्द्रियों का दमन, कषायों का शमन और विषय भोगों का वमन होता है। अत:

आत्म-निग्रह ही सच्चे और स्वस्थ मुनि जीवन का प्रमाण है।

बहुत सम्भव है कि कृश, निर्बल और शिथिल शरीर में भाव मुनित्व न हो तथा स्थूल, सबल और तेजस्वी शरीर में भी भाव मुनित्व की सुगंध हो, इसका प्रमाण है प्रस्तुत कथानक।

पूर्व महाविदेह क्षेत्र में पुण्डरिकिणी नगरी!

महाराजा महापद्म और महारानी पद्मावती!

पुत्रद्वय- पुण्डरीक और कण्डरीक।

एक बार धर्म प्रभावक जैनाचार्य का आगमन हुआ। राजा महापद्म उनके दर्शनार्थ नलिनीवन उद्यान में गया। देशना क्या थी- मानो मोहनिद्रा में सुषुप्त आत्मा के लिये जागरण का घण्टनाद।

युवराज पुण्डरीक को राज्यभार सौंपकर राजा ने पावन प्रव्रज्या स्वीकार कर ली। प्रजा का औचित्यपूर्ण पालन करते हुए कितने ही वर्ष बीत गये। एक बार नगर में श्रमण भगवंतों का आगमन हुआ।

सत्य की शोध का मार्ग जानकर पुण्डरीक का मन दीक्षा के रंग में रंजित हो गया।

भ्राता कण्डरीक के सम्मुख मन की बात रखते हुए पुण्डरीक ने कहा- मुझे संसार के वैभव से कोई सरोकार नहीं। भाई, तूं राजगद्दी संभाल और मेरी संयम-साधना में सहयोगी बन।

जब कण्डरीक पुण्डरीक का ही भाई था, तब वह उससे उन्नीस कैसे हो सकता था। उसका आग्रह था कि- भैया! आप प्रजाजन और राज्य-साम्राज्य का कुशल-क्षेम करें। मुझे तो दीक्षा के उपवन में जाना है।

पुण्डरीक ने उसे पुनः समझाते हुए कहा- देख अनुज! तूं

अभी कोमल है। संयम के कठोर पथ पर चल पाना इतना सरल नहीं है। संसार में यथाशक्ति धर्म-कर्म करता हुआ प्रजा के हित और सुख का संरक्षण कर।

पर कण्डरीक अपने इरादे में पूरा पक्का था। आखिर पुण्डरीक को आज्ञा देनी पड़ी। पीछे पुण्डरीक जल में कमलवत् निर्लिप्त रहता हुआ अपने कर्त्तव्यों को निभाने लगा और यथामति-यथाशक्ति धर्म-कर्म में आत्मा को भावित करने लगा।

कण्डरीक ने जिस बढ़ती-चढ़ती आत्मश्रद्धा से प्रव्रज्या अंगीकार की, उसी वर्धमान श्रद्धा से वे श्रमण धर्म के आचारों का परिपालन करने लगे।

स्वाध्याय-साधना उनके जीवन की बनी सुवास।

तप-आराधना उनके जीवन की बनी उजास।

निरन्तर रूखा-सूखा और नीरस आहार करते हुए शरीर में दाह उत्पन्न हो गया। अंग-अंग दाह ज्वर में तपने लगा।

एकदा आचार्य श्री कण्डरीक आदि मुनियों के साथ पुण्डरीकिणी में आये। पुण्डरीक राजा ने अपना अहोभाग्य जान श्रमण वृंद का भावभीना अभिनंदन किया।

भाई महाराज के व्याधि निवारण के लिये उन्हें वाहनशाला में आमंत्रित किया। रोगोपचार की समुचित व्यवस्था के साथ पौष्टिक, बलवर्धक और अनुकूल व्यंजनों से न केवल व्याधि का निवारण हो गया अपितु निस्तेज शरीर की कांति भी लौट आयी।

अब मुनि कण्डरीक का मन विहार करने के लिये कैसे उद्यत हो? सारी सुविधाओं को छोड़कर पुनः असुविधाओं में जाने के लिये कण्डरीक मुनि तैयार न थे।

आचार्यश्री द्वारा पुनः पुनः सारणा-वारणा करने पर मन के गुलाम मुनि वहीं रह गये और आचार्यश्री शिष्य समुदाय के साथ विहार कर गये।

कण्डरीक मुनि के मन की कमजोरी पुण्डरीक से छिपी न रही। उन्हें संयम में स्थिर करना उनका कर्त्तव्य मात्र नहीं, अपितु आत्मधर्म भी था। वे जब तब संसार के भोगों की निंदा और श्रमण-जीवन के त्याग की प्रशंसा करते। उन्होंने गिरते हुए मन को थामा और कण्डरीक मुनि को आचार्यश्री की दिशा में प्रस्थान करवा दिया।

पर, अब मुनि कण्डरीक का मन साधना से पतित हो चुका था। रह-रहकर संसार की वासनाएँ सतातीं, सुविधाएँ धर्म-बल को क्षीण करतीं और मुनि कहीं भी चैन-आराम नहीं पाते।

दुगुने वेग से हुए आक्रमण ने भोगों की प्यास बढ़ाई और वे दौड़े आये भाई पुण्डरीक के पास।

पुण्डरीक ने पूछा- क्या तुम संसार में आना चाहते हो?

शर्म छोड़कर मुनि बोले- हाँ, मैं संसार का इच्छुक हूँ।

यह समय पुण्डरीक के लिये एक स्वर्णिम अवसर था। भोगी बन गया त्यागी और त्यागी बन गया भोगी। जगत ने यह भी देखा कि साधना में मस्त रहने वाला मुनि किस प्रकार संसार-माया के दलदल में फँसता है और भोगों के गर्त में गिरा राजा कैसे राजभवन का त्याग कर संयम की प्रतिकूलताओं का सहर्ष स्वागत करता है।

कथा का कारुणिक और भावनात्मक अन्त कहता है कि काया से कृश, देह से दुर्बल मुनि कण्डरीक तीसरे दिन मरकर नरक के दारूण दुःखों के मेहमान बनते हैं तथा शरीर से सर्वांग सुंदर,

हृष्ट-पुष्ट मुनि पुण्डरीक तीन दिन की साधना के परिणामस्वरूप निकट मोक्षगामी बनकर उच्च देवलोक में महर्द्धिक देव बन जाते हैं।

कथा का उपसंहार करते हुए इन्द्रभूति गौतम मुखर हुए- भव्यजनों! शरीर की स्थूलता और सबलता सच्चे मुनित्व का विरोधी प्रमाण नहीं है और काया की कृशता और निर्बलता भाव मुनित्व का संकेत नहीं है।

इन्द्रभूति गौतम की सत्यप्रिय और निखालस वाणी से वैश्रमण देव की शंका का समाधान हो गया। तिर्यग्जृंभक देव और विद्याधर उनकी ज्ञान-संपदा को वंदनाएँ करते रहे।

❑ ज्ञाताधर्मकथांग सूत्र

39.
कवल ते केवल रूप हुआ...

कुछ पल साल की भांति लम्बे हो गये। एक रात युग की तरह मन को कचोटने लगी।

समर्पण के दीप मन की दहलीज को रोशन कर रहे थे। प्रतीक्षा की घड़ियाँ लम्बी लग रही थी।

पर... कहाँ? कौन कर रहे हैं इंतजार? किसकी हो रही है प्रतीक्षा? अष्टापद की पहली-दूसरी-तीसरी सीढ़ी पर बैठे कोडिन्न, दिन्न और सेवाल कुल पन्द्रह सौ तापसों के साथ पलक-पांवड़े बिछाये इन्द्रभूति गौतम के आगमन की प्रतीक्षा में थे। ऐसी तीव्र आकांक्षा कि कब वे आयें और मैं उनके चरणों को पकड़ कर बैठ जाऊँ। उन्हें अपने जीवन के आसन पर बिठाकर स्वागत करूँ?

श्रद्धा के तोरणद्वार बांधू,
प्रेम के दीप जलाऊँ....

वास्तव में गौतम स्वामी का प्राग्पुण्यभार विशिष्ट था। जो दर्शन करे, वह उन्हें समर्पित हो जाये। जो वाणी सुने, चारित्र की चाँदनी उसके हृदय-मंदिर को सौम्यता से भर दे।

अभी तो पन्द्रह सौ तापसों ने दूर से देखा था और इतने में ही मानस का रूपान्तरण हो गया... भक्ति का अवतरण हो गया।

इधर चरम-शरीरी होने का प्रमाण-पत्र इन्द्रभूति गौतम को उल्लास से भर रहा था।

उन्हें देखकर सारे तापस उनके चरणों में नत-विनत हो गये।

गणधर प्रवर ने योग्य पात्र समझकर जीवन का बोधधन दिया। परिणाम सामने था। सारे तापस श्रमण जीवन के सुंदर उपवन में प्रविष्ट हो गये। इन्द्रभूति गौतम का मन परमात्मा महावीर के प्रति श्रद्धा रस से तरबतर हो गया- यह तो मेरे गुरुदेव की बलिहारी है कि उनकी धर्म-फुलवारी दिन-प्रतिदिन नये पुष्पों से महक रही है।

वर्धमान की वंदना में वे विनत हो गये।

समवसरण की ओर बढ़ते चरण गुर्वाज्ञा में विचरण करने का संकेत दे रहे थे।

- गुरुदेव! हम कहाँ जा रहे हैं? एक शिष्य ने नपे तुले शब्दों में प्रश्न किया।

- वत्स! मेरे गुरुदेव के पास! परमात्मा के पावन चरणों में।

- तो क्या आपके भी कोई गुरुदेव हैं?

- हाँ वत्स! सर्वज्ञ परमात्मा महावीर ही मेरे गुरुदेव हैं। उनकी कृपा मेरे जीवन का वरदान है। मैं अँधेरा हूँ तो वे दीप हैं। मैं धूप हूँ तो वे कल्पतरू हैं। उनके जैसा तीनों लोक में कोई भी नहीं।

- तो क्या वे आप जैसे ज्ञानी हैं?

- अरे वत्स! कहाँ तुम मुझ जैसे बिंदु की सर्वज्ञ रूपी सिंधु से तुलना कर रहे हो!

- ज्ञान में मैं रजकण हूँ तो वे गिरिवर हैं।

- सौंदर्य में मैं तारा हूँ तो वे सूर्य-चन्द्र हैं।

- आकाश की तरह अमाप और सागर की तरह विशाल है उनकी करुणा-दृष्टि। मैं उनकी आज्ञा में चलता हूँ और उनकी दृष्टि से देखता हूँ। उनके बिना मेरा अस्तित्व ठीक वैसा है, जैसे बिना तेज का सूरज और बिना गंध का फूल।

सारे नूतन मुनि भली-भांति जान चुके थे कि हमारे गुरुदेव का ज्ञान कितना महान है, तथापि उनकी विनम्रता को मापने जायें तो उसके सामने अनन्त आकाश भी छोटा पड़ जाये।

यह लघुता ही इनकी प्रभुता है।

यह नम्रता ही इनकी महानता है।

अभिनंदना के पुष्पों की सुवास से मन-चमन महक उठा।

देखते-देखते दिन का तीसरा प्रहर आ गया। इन्द्रभूति गौतम ने कहा- बताओ, आज किस द्रव्य से पारणा करना है?

सभी नूतन श्रमण मुखर हुए- प्रभो! हमें आज परमानन्द की अनुभूति हुई है, अतः परमान्न (खीर) से पारणा करवाइये।

इन्द्रभूति गौतम गये और एक छोटे से पात्र में एषणापूर्वक परमान्न ले आये।

तापसों ने देखा कि हम पन्द्रह सौ तीन और खीर का इतना छोटा-सा पात्र। एक-एक बूंद परोसेंगे, तब भी कम ही पड़ेगी। वे अपने शंका जाल से बाहर निकलें, उससे पहले इन्द्रभूति गौतम ने उन्हें अनुशासनबद्ध होकर बैठने की आज्ञा प्रसारित की। तदुपरान्त समस्त शंकाओं का पलभर में निवारण करने के लिये पात्र में अंगुष्ठ डुबा दिया। होना तो वही था, जो अनन्त लब्धि निधान करने वाले थे। अक्षीण महानसी लब्धि के प्रभाव से समस्त नये साधुओं का प्रसन्नता पूर्वक परिपूर्ण पारणा हो गया, पर परमान्न कम नहीं हुआ।

सारे मुनिवर जान गये कि हमारे गुरु कहने में ही गुरु नहीं हैं, अपितु गुणों के वजन में भी गुरु-महागुरु हैं। प्रणाम है इस दिव्य महापुरुष को, जो अनन्त शक्तियों का कोष होने पर भी सरल, तरल और विरल है।

भावधारा में जैसे अमृत का सिंचन हुआ। अपने गुरुदेव इन्द्रभूति गौतम की वंदना में हृदय-वीणा का संगीत मिल गया और पारणा करते-करते ही सेवाल को पाँच सौ मुनियों के साथ अक्षीण केवलज्ञान प्राप्त हो गया। कवल ही जैसे केवलज्ञान बन गया।

गौतम स्वामी इस घटना से अनभिज्ञ थे। विहार करते हुए वे समवसरण के निकट पहुँचे।

यह है मेरे प्रभु का समवसरण!

दूर से देखा समवसरण; उसकी अलौकिक छटा और अमल आभा निहारते हुए दिन्न और उनके सहवर्ती पाँच सौ मुनियों की विमल प्रज्ञा इतनी ऊर्ध्वगामी बनी कि उनकी आत्मा में अनुत्तर ज्ञान का प्रकाश बिखर गया।

घटनाक्रम यहीं नहीं थमा। परमात्मा की एक योजन गामिनी पीयूषवर्षिणी वाणी ने कोडिन्न एवं उनके पाँच सौ मुनियों के मन में एक चमत्कार उत्पन्न किया।

अरे! ऐसी दिव्य वाणी! सौम्य गर्जना! अमृतधारा! निर्मल प्रवाह! आह्लादकारी देशना! अनुमोदना के सागर में डूबे तो ऐसे कि जैसे कैवल्य के कीमती मोती लेकर ही बाहर आये।

आगे-आगे इन्द्रभूति गौतम!

पीछे-पीछे पन्द्रह सौ तीन केवली भगवंत।

- ये हैं मेरे गुरुदेव! मेरे भगवान! सारी दुनिया के तारणहार!

तीन प्रदक्षिणा देकर सकल केवली केवलज्ञानी-पर्षदा की ओर बढ़े कि इन्द्रभूति गौतम बोले- अरे! अरे!! तुम कहाँ जा रहे हो? तुम्हारा स्थान उधर नहीं, इधर है। तुम सभी अभी नये हो, इसलिये समवसरण की व्यवस्था नहीं जानते, कोई बात नहीं। पहले प्रभु को

वंदना करो, बाद में मैं जहाँ बैठने का कहूँ, वहाँ बैठो।

इन्द्रभूति गौतम जैसे एक श्वास में ही सारी बात कह गये।

अनसुना करके बढ़ते केवलज्ञानी को वे फिर से टोकें, इतने में परमात्मा महावीर के वचन-पुष्प खिरे- गौतम! ऐसा कहकर इन केवलियों की अशातना मत कर।

- क्या भगवन्? अभी-अभी तो मैंने इन्हें परमान्न से पारणा करवाया है और केवलज्ञान हो गया? विस्मय इन्द्रभूति गौतम के मुख पर लहरा रहा था।

- गौतम! केवलज्ञान का न उम्र से संबंध है, न क्षेत्र से। अशुभ भावनाओं का तीव्र वेग जहाँ नरक के गर्त में गिराता है तो शुभ भावनाओं की तीव्र गति स्वर्ग की संपदा सौंपती है। इससे भी आगे जब जीव का आभावलय और उसकी विचार श्रेणी विशुद्धि की ओर बढ़ती है, तब भव-भव के संचित कर्म कुछ पलों में विनष्ट हो जाते हैं और आत्मा परमात्मामय बन जाती है।

- तहत्ति भंते! आपने जैसा फरमाया है, वह निश्शंक और सत्य है।

इन्द्रभूति गौतम की नम्रता साकार हुई और वे उसी पल केवलज्ञानी भगवंतों से क्षमा-याचना कर पाप-भार से हल्के हो गये। पाप का बोझ उठाना उनके लिये असह्य था, उस भार को उतारने के लिये लघुता का आचरण उनके जीवन का सहज गुण था।

40.
स्नेह के तन्तुओं का ताना-बाना

इन्द्रभूति गौतम के देखते-देखते उनके कितने ही शिष्य मोक्षगामी हो गये... सुधर्मा स्वामी को छोड़कर अग्निभूति आदि नौ गणधर भी परम पद को उपलब्ध हो गये। इन घटनाओं से यद्यपि वे खिन्न मनस्क नहीं बने थे, पर साल आदि पाँच एवं पन्द्रह सौ तीन तापसों के केवलज्ञानी हो जाने से इन्द्रभूति गौतम का अंतर्मन विषादग्रस्त बन गया था। यद्यपि हृदय की पीड़ा शब्दों में व्यक्त न हो पाती, पर उनके मन का चलचित्र अंतर्यामी परमात्मा महावीर से छिपा कैसे रहता!

परमात्मा महावीर त्रिकालज्ञ, समयज्ञ और सर्वज्ञ थे। वे इन्द्रभूति गौतम की झंखना से सुपरिचित थे तो घटित नूतन प्रसंगों से मन में उपजी खिन्नता को भी जानते थे।

- क्या मेरा परिनिर्वाण नहीं होगा?
- क्या मुझे परमज्ञान नहीं होगा?

ये दोनों प्रश्न इन्द्रभूति के मन के इर्द-गिर्द छाये हुए थे। यद्यपि इन्द्रभूति गौतम समाधि और समता के भण्डार थे, तथापि छद्मस्थ तो थे ही। कभी-कभी विषाद के काले बादल उन्हें अस्वस्थ बनाने का प्रयत्न करते।

परमात्मा महावीर की शांत-प्रशांत सन्निधि! वहाँ भला उद्वेग, उदासी और अन्यमनस्कता को कैसा स्थान? प्रभु महावीर जानते थे कि इन्द्रभूति गौतम का चित्त स्वस्थ और समाधिस्थ नहीं है। वह नहीं

जानता कि यह उसका चरम भव है। यद्यपि स्वलब्धि से अष्टापद की अमर यात्रा से अमर पद नामांकित हो चुका है, तथापि मन विषण्ण और खिन्न बन गया है। मेरा यह सहज कर्त्तव्य बनता है कि मैं इन्द्रभूति को समाधि में स्थिर करूँ। आहत मन का उपचार कर समाधि की यात्रा में सहज निमित्त बनूँ।

भगवान ने पूछा- गौतम! तीर्थंकरों के वचन निश्शंक होते हैं या सशंक?

विनयावनत इन्द्रभूति गौतम का उत्तर था- भंते! तीर्थंकरों के वचन निश्शंक होते हैं। उनमें शंका, संदेह या अश्रद्धा को स्थान कहाँ!

अस्वस्थ मन की शल्य चिकित्सा करते हुए परमात्मा महावीर ने कहा- फिर गौतम! तेरे मन में यह असमाधि, अस्वस्थता और अस्पष्टता कैसी?

तूं ऐसा क्यों सोचता है कि तेरा परिनिर्वाण इस भव में नहीं होगा। भवोभव राग-द्वेष की परम्परा चलती रहेगी।

जब जिन वचन के अनुसार तूंने स्वलब्धि से अष्टापद की यात्रा सम्पन्न कर ली, तब तुझे पूर्ण आत्मविश्वास होना चाहिये कि मैं चरम भवस्थ हूँ। तीर्थंकरों के प्रवचन अन्यथा नहीं होने से तूं इसी शरीर से शुद्ध, बुद्ध और सिद्ध पद का उपभोक्ता बनेगा।

एक ही क्षण में जैसे इन्द्रभूति के मन का विषाद अमृतवाणी से प्रक्षालित हो गया। उनका रोम-रोम प्रभु के प्रति श्रद्धा से आपूर्ण हो गया।

अबोध बालक की तरह वे पुनः प्रश्नवाचक मुद्रा में प्रश्नायित हुए- भंते! मेरे हृदय की एक जिज्ञासा को समाहित करने की कृपा

करे। जब मेरी मुक्ति इसी भव में सुनिश्चित है, तब मैं मुक्ति पद को प्राप्त क्यों नहीं हो जाता?

– गौतम! निज जीवन में तूंने अनेकानेक सद्गुणों का उपार्जन किया है। वैराग्य से संसार की असारता का बोध पाया है। विनय, विवेक और विद्या की त्रिवेणी गंगा में नहाकर न केवल आत्म-कल्याण का पथ प्रशस्त किया है अपितु लोक-कल्याण के संदर्भ में भी महती भूमिका का निर्वहन किया है।

तेरे मन में मोह की कोई ग्रंथि नहीं...

स्वयं के प्रति कहीं कोई रागात्मक प्रशस्ति नहीं...

- यति के दस धर्म....
- ब्रह्मचर्य की नव वाड....
- सप्तनय विचार....
- षड्जीव निकाय की जयणा....
- पंचमहाव्रतों का निर्मल पालन....
- चार कषायों पर विजय....
- रत्नत्रयी की निर्मल आराधना....
- ज्ञान और क्रिया का उत्तम विकास....
- आत्म-तत्त्व के प्रति परिपूर्ण सुरुचि....

इन सबकी निर्मल परिणति, परिपूर्ण विकास तथा दुर्गुणों का ह्रास; एक तरह से तूं केवलज्ञान की भूमिका के अत्यन्त निकट पहुँच चुका है.... पर एक हल्का आवरण तेरे केवलज्ञान के प्रकाश को आवृत्त कर रहा है।

– प्रभो! वह कौन सा आवरण है?

– मेरे प्रति राग का आवरण। स्नेह के तंतु पतले भले हों,

पर कच्चे नहीं होते।

मेरे प्रति जो तेरा रागात्मक आकर्षण है, वही तेरे वीतराग स्वरूप के प्रकटीकरण में बाधा उत्पन्न कर रहा है। तुम यदि इस मोह-ग्रंथि की शल्य चिकित्सा कर दो तो आज, अभी, इसी क्षण तुम्हें केवलज्ञान हो सकता है, तुम्हारी आत्मा का निस्तार हो सकता है।

- पर प्रभो! मेरा चित्त आपके प्रति प्रगाढ़ राग का वाला क्यों है?

- हे गौतम! तूं दीर्घावधि से मेरे प्रति स्नेह से जुड़ा हुआ है .... हे गौतम! तूंने लम्बे समय तक मेरी प्रशंसा की है.... हे गौतम! तेरा मेरे साथ लम्बे काल से परिचय रहा है.... हे गौतम! तूंने लम्बे समय से मेरे अनुकूल आचरण किया है....

मरीचि और कपिल की तथा त्रिपृष्ठ और सारथी की बात तो पुरानी हुई, पिछले देव भव में तथा इस मनुष्य भव में भी तेरा मेरे साथ प्रकृष्ट प्रेमालाप रहा है। इससे अधिक विशेष बात क्या होगी कि इस भव के बाद यह संबंध और अधिक प्रगाढ़ होगा। तेरी और मेरी आत्मा समान गुण वाले परमात्म पद को समुपलब्ध हो जायेगी। हम दोनों समान और एक साथ अनन्त ज्ञान-दर्शन-चारित्र और शक्ति गुण के प्रकाश में लीन रहेंगे।

इन्द्रभूति गौतम को अहसास हुआ कि राग के बंधनों को तोड़े बिना मुक्ति की संप्राप्ति असम्भव है। परमात्मा के प्रति मेरी गुणात्मक रति का संपूर्ण विरति में विलीनीकरण ही आत्मा से परमात्मा बनने की प्रक्रिया है।

गौतम! मेरे प्रति तेरे मन में जो स्नेह और आकर्षण के बंधन

हैं, उसे यदि वैराग्य की तीक्ष्ण धारा से भेद दे तो तुझे इसी क्षण केवलज्ञान उपलब्ध हो सकता है। निर्मोही महावीर ने जैसे शंका की सारी जड़ें समूल उखाड़ दीं।

पल भर के लिए तो इन्द्रभूति गौतम भौंचक्के रह गये।

– भंते! आप यह क्या कह रहे हैं? केवलज्ञान पाने के लिये आपका राग छोड़ना पड़ेगा? नहीं प्रभो! नहीं। यह सम्भव नहीं।

– मेरे लिये तो आप ही केवलज्ञान और आप ही निर्वाण का परम सुख! मेरे प्रभु! मैं आपको छोड़कर केवलज्ञान पाने की कल्पना भी नहीं कर सकता।

मुझे चाहिये आपका वरदहस्त!

मुझे चाहिये आपकी अमृतवाणी!

आपका दर्शन मेरा केवलज्ञान है।

मेरी समाधि और शांति आपके चरणों में है।

कहते हुए इन्द्रभूति गौतम अत्यन्त भावुक, संवेदनशील और गद्‌गद् हो उठे। आँखों से समर्पण और प्रेम का अथाह सागर छलक उठा।

मोह विजेता महावीर ने आत्मसिद्ध अनुभव के वज्र से मोहगिरि पर तेज प्रहार करते हुए कहा–

कुसग्गे जह ओस बिंदुए, थोवं चिट्‌ठइ लंबमाणए।
एवं मणुयाण जीवियं, समयं गोयम मा पमायए॥

कुश (दर्भ-घास) के अग्र भाग पर रहा हुआ ओस का कण जिस प्रकार अल्पकाल ही ठहरता है, उसी प्रकार यह मनुष्य-जीवन भी चंचल, नश्वर और क्षणिक है, अतः गौतम! क्षणमात्र भी प्रमाद मत कर।

परिजूरइ ते सरीरयं, केसं पंडुरया भवंति ते।
से सोयबले य हायइ, समयं गोयम मा पमायए॥

प्रतिक्षण तेरा शरीर क्षीण हो रहा है, प्रतिक्षण तेरे बाल सफेद हो रहे हैं, प्रतिक्षण श्रोत्रादि इन्द्रियों का बल कम हो रहा है, इसलिये हे गौतम! पल भर भी प्रमाद मत कर।

तिण्णो हु सि अन्नवं महं, किं चिट्ठसि तीरमागओ?
अभितुर पारं गमित्तए, समयं गोयम मा पमायए॥

हे गौतम! महाभवसागर को पार करने के बाद किनारे पर आकर क्यों रुका है? पार हो जाने के लिये त्वरा कर। अतः हे गौतम! क्षणमात्र भी प्रमाद कर!

द्वादश पर्षदा पीयूष वाणी में निमज्जन कर रही थी। मोह की निद्रा से झिंझोड़ने और जगाने वाले प्रवचन श्रवण कर जनसमूह संकल्प दीप की ज्योति में अपनी राह को निहार कर कदम रखने हेतु प्रयत्नशील था।

इन्द्रभूति गौतम भी वैराग्य की अमीवर्षा में भीगकर आत्मानुभूतियों में डूब-से गये थे।

❑ उत्तराध्ययन सूत्र

41.
मन का समाधान

भारत भूमि की एक पुण्य भूमि, राजगृही!

इस राजगृही के निकट स्थित तुंगिया नगरी।

तुंगिया नगरी धन से ही नहीं, धर्म से भी सम्पन्न थी। एक तरह से यों भी कह सकते हैं कि तुंगिया नगरी में श्रमणोपासकों के समर्पण, सेवा और स्वाध्याय का त्रिवेणी संगम था।

इसी नगरी में विचरण करते हुए सुव्रती और सद्‌गुणी श्रमणों का एक विशाल समुदाय उपस्थित हुआ।

वे साधु परमात्मा पार्श्वनाथ का अनुगमन करते हुए संयम साधना में जीवन की सुवास का आनंद उठा रहे थे।

साधु रूपी पुष्प नगर के उपवन में खिले और श्रावक रूपी भ्रमर उन पर न मंडरायें, यह कैसे सम्भव था। श्रावकों के हृदय-कमल खिले उठे। स्वाध्याय, संतोष और सादगी का पराग पाने के लिये वे श्रमण-पुष्प-गुच्छक के सान्निध्य में चले आये।

वंदन, सेवा और सत्कार के निर्मल अक्षत चरणों में धर कर वे उनकी पर्युपासना करने लगे।

प्रश्नोत्तरों का सुन्दर सिलसिला।

समाधान का सुन्दर आनन्द।

कर्म-धर्म आदि अनेक विषयों से जुड़े प्रश्नों का समुचित, सरल समाधान पाकर वे नित-नित उनकी उपासना करने लगे।

भारत भूमि के गौरव परमात्मा महावीर विचरण करते हुए

राजगृही की सीमाओं में पहुँचे। परमात्मा महावीर के आज्ञांकित शिष्य इन्द्रभूति गौतम प्रभु के साथ ही थे।

परमात्मा राजगृही के बहुशाल उद्यान में विराजे। एक दिन गौतम स्वामी गौचरी की प्रवृत्ति में व्यस्त थे। उनके तीन उपवास का पारणा था। शुद्ध, प्रासुक और कल्पनीय आहार हेतु भिक्षाटन करते हुए इन्द्रभूति गौतम ने राजगृही के श्रावकों से जाना कि निकटस्थ गाँव में पार्श्वनाथ परमात्मा के साधु पधारे हैं। वे चार महाव्रतों का पालन करते हैं। उन्होंने श्रावकों की विपुल जिज्ञासाओं का निवारण किया है। सुनकर इन्द्रभूति गौतम के मन में संशय और जिज्ञासा ने जन्म लिया।

गौचरी लेकर प्रत्यावर्तित गौतम स्वामी ने प्रभु के उपपात में उपस्थित होकर पूछा- प्रभो! तुंगिया नगर में जो मुनिवर आये हैं; उन्होंने श्रमणोपासकों की जिज्ञासाओं का समाधान किया है। मैं तो आपसे जानना चाहता हूँ कि क्या वे साधु समुचित समाधान करने में समर्थ हैं और उन्होंने जो स्पष्टीकरण दिये हैं, क्या वे बिल्कुल यथार्थ हैं? प्रभो! क्या वे साधु विशेष ज्ञानी, अभ्यासी, मिथ्याज्ञान से विमुक्त तथा सम्यक् प्रवृत्ति वाले हैं?

परमात्मा ने कहा- गौतम! उन साधुओं ने जो समाधान दिये हैं, वे अवितथा तथा सही हैं; क्योंकि वे मुनिवर समर्थ और सक्षम हैं। विशेष ज्ञानी, अभ्यासी, सम्यक् प्रवृत्ति करने वाले तथा मिथ्या ज्ञान से मुक्त हैं।

संशय का समाधान प्राप्त कर इन्द्रभूति गौतम अत्यन्त प्रसन्न हुए।

❑ भगवती सूत्र, शतक-2

42.
संदेश वाहक : इन्द्रभूति गौतम

प्राय: पूर्व भवों का ऋणानुबंध जीव को परेशान करता है। यथा–

राजीमती का नेमिकुंवर के प्रति राग का अनुबंध!

मेघमाली का पार्श्वनाथ के प्रति वैर का अनुबंध!

दोनों ही अनुबंध हेय हैं। राग भी डुबाता है और द्वेष भी डुबाता है।

विधि कभी–कभी ऐसे ऋणानुबंध लिख देती है, जिसे काल के थपेड़े भी मिटा नहीं सकते।

परमात्मा महावीर के आनंद, कामदेव आदि दस महाश्रावक हुए, जिसमें से राजगृही का महाशतक भी जिनधर्म का अनन्य उपासक था। उसकी पत्नी का नाम था– रेवती।

नदी के दोनों किनारों का संगम हो तो महाशतक और रेवती का मन मिले। एक उत्तर दिशा का ध्रुव तारा तो दूसरा दक्षिण दिशा का ध्रुव तारा।

महाशतक धर्म परायण होने के साथ–साथ एक विशिष्ट आराधक था। उसकी जीवन–बगिया सेवा, साधना, स्वाध्याय, विनय, विवेक, त्याग, विराग जैसे सैकड़ों गुण–पुष्पों से महकती रहती थी। यों भी कह सकते हैं कि जब से उसने जाना कि आत्मा का दर्शन क्या है, तब से उसकी दिशा और दशा, दोनों ही परिवर्तित हो गयी।

भार्या रेवती की धर्म में तनिक भी रुचि नहीं। अधर्म उसका

स्वभाव बन गया था। झूठ, चोरी, माया के दलदल में वह आकण्ठ फँसी-धँसी हुई थी। उसके मन में खाद्य-अखाद्य, पेय-अपेय, कार्य-अकार्य की न मर्यादा थी, न बोध था। इन्द्रिय भोग और वासना की गंदी नाली में ही उसने जीवन का सुख जाना-माना था। इस कारण उसके मन में महाशतक के प्रति असंतुष्टि की आग धधकती रहती थी। जीवन की अनिश्चितता और भोगों की क्षणभंगुरता का चिन्तन कर महाशतक ने श्रावक की ग्यारह प्रतिमाओं का उत्कट विधान किया।

घर और दुकान का व्यवहार तो पहले ही छोड़ चुके महाशतक श्रावक अपनी आत्मा को अधिकाधिक धर्म-ध्यान से भावित करने लगे। पौषधशाला ही उनका घर बन गयी। दिन और रैन वे मात्र शांति और समाधि के आस्वादन हेतु उद्यम करने लगे।

इतना ही नहीं, जब महाशतक ने जाना कि इस शरीर में अभी भी बल, वीर्य, पराक्रम और पुरुषाकार अवशिष्ट है, तब क्यों न मैं श्रावक जीवन के श्रेष्ठ मनोरथ को सफल करूँ। पण्डित मरण की प्राप्ति के आधार स्वरूप उन्होंने अनशन स्वीकार कर लिया।

रेवती पहले से ही पति के प्रति असंतुष्ट थी, अब तो जैसे वज्रपात हो गया। अपनी अतृप्त वासना को लेकर वह पौषधशाला में पहुँची और सर्वथा अनुचित व्यवहार करने लगी। महाशतक ने आत्म निग्रह का अद्‌भुत पुरुषार्थ साधा, पर जब विवेक की सारी हदों को पार करके रेवती अनर्गल प्रलाप करने लगी; तब महाशतक का मन काबू में न रहा।

शुभ अध्यवसाय से उत्पन्न अवधिज्ञान में उसने रेवती की भावी दुर्गति के जो दर्शन किये थे, वह सत्य होठों पर आ ही गया-

रेवती! भोगों की बुरी वासना की शिकार बनकर तूं इस पवित्र स्थान में घृणित प्रवृत्ति और अशिष्ट शब्दावली का जो प्रयोग कर रही है, यह सब आसानी से छूटने वाली नहीं। मैं तुझे स्पष्ट और हकीकत कहता हूँ कि तूं आज से सातवें दिन दुर्ध्यान में मृत्यु को प्राप्त होगी और मरकर छठीं नरक पृथ्वी में असंख्य वर्ष पर्यन्त पाप कर्मों का दुष्फल भोगती रहेगी।

रेवती तो प्रत्यावर्तित हो गयी, पर महाशतक की कुंदन जैसी शुद्ध साधना को क्रोध की चिंगारियों से दूषित भी कर गयी।

इसी समय में, इसी काल में प्रधान गणधर इन्द्रभूति गौतम आदि विशाल श्रमण संघ के साथ परमात्मा महावीर के पावन पगलिये राजगृही की धरा पर हुए।

त्रिकालज्ञ महावीर से न तो रेवती का दुर्मरण छिपा था, न महाशतक की विशुद्ध साधना में लगा दाग।

गणधर इन्द्रभूति गौतम को महाशतक और रेवती का यह वृत्तान्त बताते हुए प्रभु महावीर ने कहा- हे गौतम! तुम जाओ महाशतक के घर और उसे मेरा संबोधि-वचन प्रदान करो। ऐसा कहते हुए परमात्मा ने महाशतक के लिये प्रायश्चित्त और पश्चात्ताप की बात कही।

तहत्ति पूर्वक इन्द्रभूति गौतम महाशतक श्रावक के पास पहुँचे। गणधर प्रवर की निर्दोष मुखमुद्रा से महाशतक मुदित हुए बिना न रहा। सुखशाता पृच्छा और वंदना के क्षणों में वह श्रद्धा से अभिभूत हुआ। अहा! परमात्मा के प्रथम गणधर विनयमूर्ति इन्द्रभूति गौतम मुझे दर्शन देने के लिये पधारे! यह इनकी सरलता की परिणति है।

इसके बाद इन्द्रभूति गौतम ने परमात्मा का संदेश सुनाते हुए

कहा- महाशतक! मरण-पर्यन्त अनशन को स्वीकार करने वाले श्रमणोपासक को अप्रिय सत्य और कटु वचन बोलना कल्पता नहीं है, इसी प्रकार क्रोध करना भी अनुचित ही है। इसलिये महाशतक! परमात्मा का संदेश है कि रेवती की दुर्गति से परिचित होने पर भी तुमने उसे जो मर्मभेदी वचन कहे और क्रोध कर कुंदनवत् विशुद्ध साधना को मलिन किया, उसके लिये तुम्हें प्रायश्चित्त लेना चाहिये।

महाशतक के नयन कृतज्ञता के अश्रुओं से छलक उठे। अहो! प्रभु की ऐसी करुणा कि मेरे पाप-पंक को धोने के लिये इतना महान उपकार किया और महात्मा इन्द्रभूति गौतम की महाभद्रता, जो मेरे गृहांगन में पधारे।

महाशतक की आँखों में प्रायश्चित्त के प्रति जो विषाद, खेद और दु:ख का निर्मल भाव था, वह गौतम स्वामी से अनभिज्ञ नहीं रह सका।

गौतम स्वामी परमात्मा की करुणा को वंदन कर रहे थे तो महाशतक की महासाधना, भद्रिक हृदय और निर्दोष भाव परिणति का अभिनंदन भी कर रहे थे।

परमात्मा महावीर की करुणा, महात्मा गौतम की कृतार्थता और महाशतक की कृतज्ञता इतिहास के पन्नों पर स्वर्णाक्षरों में अंकित हो गयी।

❑ उपासक दशांग सूत्र

43.
परमात्मा महावीर की दिव्य-दृष्टि

परमात्मा महावीर की कैवल्य से आलोकित सत्य और दिव्य दृष्टि अपने आप में विलक्षण थी। उनकी दृष्टि में विशालता थी और विचारों में उदारता थी।

उनका जोर भाव-शुद्धि पर विशेष था। हाँ, व्यवहार लोक-विरुद्ध नहीं होना चाहिये, इस पर भी उनका खुला चिन्तन था।

वर्धमान प्रभु की यह सहृदयता ही थी कि उनके श्रमण संघ में अनेक भिक्षु वस्त्र, पात्र आदि के सर्वथा त्यागी थे, तो अनेक भिक्षु लज्जा, दंशमशक परीषह के कारण वस्त्र, पात्रादि का उपयोग भी करते थे। इतना ही नहीं, विविध जाति-पांति, वेश-परिवेश वाले स्त्री-पुरुषों को भी श्रावक-संघ में सम्मिलित किया गया था।

धर्म में कोई प्रतिबंध नहीं, ब्राह्मण हो या क्षत्रिय, वैश्य हो या शूद्र, उन सभी को शासन में उचित सम्मान और स्थान मिलता था; तभी तो हजारों-हजारों क्षत्रियादि श्रमण-संघ में दीक्षित होकर स्व-पर कल्याण में रत रहते थे।

इन सभी में मुख्य था- प्रभु की आज्ञा का एकनिष्ठ परिपालन। इसके लिए बाह्य वेश-व्यवहार का नहीं, मन और भाव जगत् का निर्मलीकरण जरूरी था। इस आज्ञा में जीने वाला हर कोई प्रभु के शासन का सदस्य बन सकता था।

ऐसे ही विचित्र वेशभूषा के धारक थे- ब्राह्मण परिव्राजक अम्बड। काम्पिल्यपुर के वासी परिव्राजक। अनेक विद्या के विशेषज्ञ

होने के साथ-साथ वे सात सौ शिष्यों के गुरु भी थे।

ये त्रिदण्ड, छत्र और कमण्डलु रखते तथापि परमात्मा की देशना से भावित होकर श्रावक संघ में दीक्षित हुए थे। बाह्य आचार ब्राह्मण ग्रन्थों से और आभ्यन्तर आचार निर्ग्रन्थ महावीर से प्रभावित था।

वे थे तो परमात्मा के श्रमणोपासक तथापि उनके रूप, रंग, ढंग और जीवन की प्रक्रिया से लोग आश्चर्य से अवाक् रह जाते। चमत्कारों की घटनाएँ भी लोक प्रसिद्ध थीं।

परमात्मा महावीर एकदा कांपिल्यपुर में पधारे। इन्द्रभूति गौतम तो प्रभु के शरीर की छाया की भांति साथ ही थे। जब वे भिक्षाटन के लिये नगर में पहुँचे, तब बहुत सारी बातें जानने को मिलीं। मन शंकाधीन हो सोचने लगा- ऐसे विचित्र व्यवहारी क्या परमात्मा के सच्चे श्रमणोपासक हो सकते हैं?

स्वयं के ज्ञान का उपयोग कर लें तो फिर इन्द्रभूति गौतम कैसे? उनका ज्ञान-विज्ञान और दृष्टि-सृष्टि केवल परमात्मा में ही सीमित थी। समर्पित चेतना ने स्वयं के अस्तित्व को परमात्मा में विलीन कर दिया था। ठीक वैसे ही, जैसे झरने धारा को, धारा नदी को और नदी सागर को सम्पूर्णतः समर्पित हो जाती है।

आहार लेकर इन्द्रभूति गौतम परमात्मा महावीर के उपपात में उपस्थित हुए, अंजलिबद्ध प्रणाम करके प्रश्न किया- भंते! मैंने पुर में लोक-मुख से जो सुना है, वह सच है?

- हाँ, गौतम! उसमें असत्य कुछ भी नहीं। वह सब सत्य ही है।

विस्मय से इन्द्रभूति गौतम पुनः प्रश्नावाचक की मुद्रा में

अभिव्यक्त हुए- तो फिर भंते! क्या अम्बड परिव्राजक श्रमणोपासक के सोपान पर खड़े हैं?

- हाँ गौतम! उसका बाह्य रंग, ढंग और वेश-व्यवहार भले ही अलग हो, पर वह भाव और गुणवत्ता की अपेक्षा से श्रावक धर्म की आराधना कर रहा है।

आखिर इन्द्रभूति गौतम बोले- भंते! क्या वह अम्बड परिव्राजक दीक्षा लेकर आपका शिष्य बनेगा, भिक्षु-संघ में सम्मिलित होगा?

- गौतम! वह दीक्षा तो नहीं लेगा, पर श्रावकोचित जप, तप आदि अनेक व्रतों का पालन करता हुआ श्रावकत्व की उत्तम भूमिका को प्राप्त करेगा।

- भगवन्! नियमों का परिपालन करके वह किस गति को प्राप्त करेगा?

- गौतम! वह देवगति को प्राप्त करेगा।

- भंते! उसकी मुक्ति कब होगी?

- गौतम! देवलोक के भोगों के बीच कमल पत्रवत् निर्लिप्त जीवनचर्या का पोषण करता हुआ वहाँ से च्यव कर वह महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेगा और उत्तम संयम धर्म की साधना करके निर्वाण पद को उपलब्ध होगा।

अम्बड की विचित्र जीवन चर्या के समाधान प्राप्त कर इन्द्रभूति गौतम का चित्त समाहित हो गया। प्रतिबोध कुशल, सर्वजन कल्याण की वांछा करने वाले गौतम स्वामी अम्बड के निर्वाण का तथ्य ज्ञात कर पुलकित हुए बिना न रहे। भावाभिवंदनाएँ उनकी आत्मा में सहज ही विकस्वर होती चली गयी।

❑ औपपातिक सूत्र

44.
निर्लिप्त महासंत गौतम

राजगृही ऐसी पुण्यशाली भव्यभूमि थी, जहाँ परमात्मा महावीर अनेक बार पधारे। इसी नगर के गुणशील चैत्य से थोड़ी दूरी पर कालोदायी, शैलोदायी, सेवालोदायी आदि गृहस्थ रहते थे। वे गृहस्थ अन्य मत, धर्म में आस्था रखते थे तथापि सत्य मार्ग के पथिक और तत्वज्ञान के रसिक थे।

समय-समय पर वे एकत्र होते और विनोद-वार्ता के माध्यम से निज शंकाओं को समाहित करने का प्रयत्न करते। सम्प्रति परमात्मा महावीर द्वारा व्याख्यायित पंचास्तिकाय पर चर्चा-विचारणा चल रही थी।

परमात्मा ने फरमाया था कि पांच अस्तिकाय अर्थात् पाँच समूहमय द्रव्य हैं।

धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, पुद्गलास्तिकाय, आकाशास्तिकाय और जीवास्तिकाय।

इनमें से जीवास्तिकाय जीव (सचेतन) है और शेष चार जड़ (अचेतन) हैं।

इनमें से पुद्गलास्तिकाय रूपी है और चार अरूपी हैं।

इस पर लम्बा मनन-मन्थन चलता, पर समाधान नहीं हो पाता।

उस समय राजगृही में मद्दुक नामक एक श्रावक निवास करता था। वह परमात्मा महावीर का परम उपासक और तत्त्व का

विशिष्ट जानकार था। कालोदायी आदि ने उससे 'पंचास्तिकाय में से एक रूपी और चार अरूपी तथा एक जीव व चार अजीव किस प्रकार हैं?' ऐसा प्रश्न किया। यद्यपि मद्दुक ने स्पष्ट रूप से समाधान किया, तथापि कालोदायी आदि के मन का समाधान न हुआ।

परमात्मा ने पर्षदा में मुद्दक के तत्वज्ञान को सटीक बताते हुए उसकी श्लाघा की।

इन्द्रभूति गौतम की जिज्ञासा व्यक्त हुई- प्रभो! वह आपके सान्निध्य में प्रव्रजित होगा या नहीं? यहाँ से वह किस गति में जायेगा?

परमात्मा ने कहा- गौतम! वह प्रव्रजित तो नहीं होगा, परन्तु श्रावक धर्म की निर्मल साधना करके देवत्व को उपलब्ध होगा और अन्त में सर्वकर्मक्षय करके निर्वाण पद को प्राप्त होगा।

भगवान का तैंतीसवाँ चातुर्मास जब राजगृही में था, तब एक बार इन्द्रभूति गौतम नगर में कल्पनीय प्रासुक आहार की गवेषणा में रत थे। आहार लेकर प्रत्यावर्तित हो रहे थे, तब बीच मार्ग में कालोदायी आदि गृहस्थों से वार्तालाप हुआ।

उन्होंने पूछा- भगवन्! हमारे भीतर में एक शंका है, जो रह-रह कर हमें सताती है। हजारों प्रयत्नों के बाद भी उसका समाधान नहीं हो पाया है। आप कृपा करके निराकरण का मार्ग सुझायें। ऐसा कहते हुए उन्होंने मन की जिज्ञासा गणधर गौतम के सम्मुख प्रस्तुत की।

गौतम स्वामी ने शब्दों का जाल फैलाने के बजाय अपनी दीर्घ दृष्टि और सूक्ष्म प्रज्ञा के आधार पर उत्तर दिया- हे देवानुप्रिय! जिस वस्तु का अस्तित्व है, उसे हम अस्तित्वाधीन कहते हैं तथा जिस वस्तु का नास्तित्व है, उसे नास्तित्वाधीन कहते हैं। इसे स्पष्ट

करते हुए इन्द्रभूति गौतम बोले- देखो! जो वस्तु सत् है, उसे होने का कहते हैं, तथा जो वस्तु असत् है, उसके नहीं होने का कहते हैं। यह भगवान की देशना पद्धति है। इस आधार पर तुम्हें तुम्हारी शंकाओं का यथोचित समाधान मिल जायेगा। कहकर इन्द्रभूति गौतम वहाँ से परमात्मा की दिशा में चल पड़े। परन्तु गौतम स्वामी के ऐसे गहन रहस्यपूर्ण कथन से कालोदायी आदि का समाधान नहीं हो पाया। शब्दों के गहन वन में पथ भूले बिसरे कालोदायी आदि तत्त्व के पथिक सही राह पाने के लिये जिनवर महावीर के चरणों में समुपस्थित हुए।

भगवान के श्रीमुख से संतोष, प्रीति और भक्ति को बढ़ाने वाले उचित समाधान पाकर कालोदायी, शैलोदायी, सेवालोदायी, उदय, नामोदय, नर्मोदय, अन्यपालक, शैल, पालक, शंखपालक और सुहस्ति भिक्षु संघ में दीक्षित हो गये। यद्यपि गौतम गणधर प्रतिबोध और प्रवचन, दोनों में अप्रतिम कुशल थे; पर कालोदायी आदि को संतुष्टिकारक प्रत्युत्तर देकर यशोभागी बनने की बजाय ऐसी स्थिति और मानस-भूमि का सर्जन किया, जिससे वे परमात्मा के पावन चरणों में आये, समाधान प्राप्त किये और दीक्षित हो गये।

इससे दिव्य पुरुष गौतम की महानता स्वतः हृदय को छू जाती है कि वे स्वयं के नाम, सम्मान और यश को नहीं, परमात्मा, परमात्मा के शासन और उसके विस्तार को महत्व देते थे, तभी तो स्वयं की ज्ञान-प्रकाण्डता और महिमा को भी उसी में विलीन कर दिया था। ऐसे निर्लिप्त योगी इन्द्रभूति गौतम को वंदना।

45.
हृदय का हेत

पैंतालीस आगमों की सुदीर्घ श्रृंखला में द्वितीय आगम के रूप में स्थापित सूत्रकृतांग सूत्र के द्वितीय श्रुतस्कंध के अंतिम सप्तम अध्ययन का नाम है- नालंदीय। इस अध्ययन में गणधर इन्द्रभूति गौतम की दिव्य तात्त्विक प्रज्ञा एवं सुदृढ़ तार्किक प्रतिभा के सुदर्शन होते हैं।

राजगृही के एक विशिष्ट क्षेत्र का नाम था- नालंदावास। इसी नालंदावास में हस्तियाम नाम का एक हराभरा शीतल उपवन था। इस उपवन में परमात्मा पार्श्वनाथ के परम्परावर्ती पेढालपुत्र उदक नामक निर्ग्रन्थ रहते थे, जो कि मेतार्य गोत्र के थे। उस समय के वातावरण में परमात्मा महावीर की परम्परा के अनुगामी कुमार पुत्र नामक एक निर्ग्रन्थ हुए, जो अहिंसा व्रत में इस प्रकार का नियम श्रावकों को दिलवाते कि 'राजा के बल प्रयोग आदि विशेष कारणों से जिन त्रस जीवों की हिंसा होती है, उसे छोड़कर मैं दूसरों की प्रेरणा से एवं चलते-फिरते किसी भी त्रस जीव की हिंसा नहीं करूँगा।'

पेढाल पुत्र उदक को इस अहिंसा व्रतोच्चारण में खामी दिखती थी। उनका चिन्तन था कि ऐसा नियम लेना उचित नहीं है, क्योंकि छद्मस्थ श्रावकों को क्या पता कि यह जीव त्रस है या स्थावर! और जो आज स्थावर है, वह अगर पूर्व भव में त्रस था तो उसे मारने से उसका नियम खण्डित होगा।

पेढाल पुत्र उदक की जागृत तर्क प्रज्ञा और विशिष्ट बुद्धि। उनके मन में अपनी विशिष्ट मेधा का अभिमान भी था। वे सोचते थे कि परमात्मा महावीर की परम्परा के कोई साधु मिल जायें तो उन्हें उनकी गलती की ओर निर्देश करूँ; और चर्चा में निरुत्तर करके अपनी विजयपताका फहराऊँ।

वे किसी ऐसे अवसर की खोज में थे। ऐसे में परमात्मा महावीर के प्रधान शिष्य इन्द्रभूति गौतम का सहज वहाँ पदार्पण हुआ।

इन्द्रभूति गौतम अध्यात्म क्षितिज के एक तेजस्वी सहस्त्रांशु। उनकी अमाप ऊँचाइयों को भला पेढाल पुत्र उदक अपने लघु पाँवों से कैसे माप पाता।

पेढाल पुत्र उनके पास गये और बताने लगे कि आपके तीर्थ में श्रावक-श्राविकाओं को दिया जाने वाला स्थूल प्राणातिपात व्रत दोषपूर्ण है। इसमें होने वाली त्रस-स्थावर या सूक्ष्म-बादर जीवों की जो हिंसा होती है, उस हिंसा का अनुमतिजनित कर्मबंध साधु को होता है। अतः इसे संशोधित करना चाहिये। उसे लगा कि दिन के उजाले के समान इस दोष से कोई क्या इन्कार कर पायेगा।

इन्द्रभूति गौतम का सहज जीवन और सहज प्रतिबोध, यद्यपि वे ज्ञान में अत्यन्त लाजवाब थे, तथापि उनके मन में स्वयं की अर्हता के प्रति तनिक भी अहं भाव नहीं था। अर्हम् पथ के राही को भला कैसा अहंकार!

पेढाल पुत्र उदक अभी भी अहंकार के मिथ्या जाल से बाहर नहीं आया था। इधर इन्द्रभूति गौतम तो जय-पराजय के विचारों से कोसों दूर रहने वाले पवित्र महापुरुष। ज्ञान के वे अक्षय कोष थे तो लघुता और मृदुता के भी भण्डार थे।

शांति और समझपूर्वक उन्होंने वाणी में अमृत का संचार करते हुए कहा- पेढाल पुत्र! तुम्हारी बात असत्य है।

उदक अहंकार की हुंकार में प्रस्तुत हुआ- वह कैसे?

उदक के मन को समाहित करने के लिए गणधर इन्द्रभूति गौतम ने एक दृष्टान्त देते हुए कहा- एक राजा ने किसी वणिक् के छह पुत्रों को राजाज्ञा भंग के अपराध में मृत्युदण्ड दिया। पिता ने राजा से कहा- राजन्! आप मेरी समस्त चल-अचल सम्पत्ति ले लें, पर मेरे छह पुत्रों को जीवनदान का वरदान दे दें।

जब वणिक् की प्रार्थना राजा ने स्वीकार नहीं की, तब वह वणिक् हताश और उदास होकर पांच, चार, तीन, दो पुत्रों के जीवनदान की याचना करने लगा।

ऐसी स्थिति में भी जब निवेदन स्वीकृत नहीं हुआ, तब उसने गलगला और संवेदनशील होकर कहा- राजन्! कुल परंपरा के सर्वथा विनाश को रोकने के लिए आप एक पुत्र को प्राणदान दें। राजा ने ज्येष्ठ पुत्र को जीवनदान देकर मुक्त कर दिया।

उदक! तूं इस दृष्टांत के आलोक में विचार कर कि साधु भी श्रावक को संपूर्ण हिंसा से विरत होने का उपदेश फरमाते हैं, जैसे वणिक् ने छह पुत्रों के जीवनदान की याचना की थी।

जब श्रावक सर्वथा हिंसा से विरत होने में स्वयं को असक्षम महसूस करता है, तब उसे शक्ति के अनुसार व्रत-प्रत्याख्यान करवाया जाता है। इसी प्रकार जब राजा ने छह, पांच, चार, तीन, दो पुत्रों को जीवनदान नहीं दिया, तब वणिक् ने वंश-नाम-कुल के संरक्षण के लिए कम से कम एक पुत्र को मुक्त करने का निवेदन किया।

उदक! यह अत्यंत स्पष्ट तथ्य है कि वणिक् के मन में छहों

पुत्रों के प्रति समान स्नेह और प्रेम का भाव था, मृत्युदण्ड पाने वाले पांच पुत्रों के वध की तनिक भी अनुमति नहीं थी, वैसे ही यथाशक्ति व्रत ग्रहण करवाने पर शेष जीव वध की अनुमति साधु की नहीं हो सकती। इससे साधु को अनुमतिजन्य कर्मबंध नहीं हो सकता।

पार्श्वापत्यीय उदक ने गौतम स्वामी के समक्ष कुछ और भी प्रश्न रखे।

आर्य गौतम! जब श्रावक आपके श्रमणों के पास प्रत्याख्यान करने आते हैं, तब वे राजाभियोग, गणाभियोग, बलाभियोग, देवाभियोग और महत्तराभियोग को छोड़कर त्रस प्राणियों की हिंसा का त्याग करवाते हैं। ऐसी स्थिति में प्रत्याख्यान करने और करवाने वाले, दोनों के दुष्प्रत्याख्यान होता है। वे दोनों अपनी प्रतिज्ञा भंग करते हैं, क्योंकि जिसने त्रस जीवों की हिंसा का परित्याग किया है, वह स्थावर जीवों का घात करता हुआ स्थावर काय में उत्पन्न पूर्ववर्ती त्रस जीवों की हिंसा करता है। जैसे किसी व्यक्ति ने ऐसी प्रतिज्ञा की कि 'मैं अमुक नागरिक का वध नहीं करूंगा', पर वह नागरिक यदि अन्य नगर में जाकर वहाँ का नागरिक बन जाये तो क्या उसका वध करने से व्रत भंग नहीं होता?

– पेढाल पुत्र! नागरिक तो नागरिक ही रहता है। यदि वह गाँव में जाता तो उस ग्रामीण की हिंसा नहीं की जा सकती। मैं तुझसे एक प्रश्न करता हूँ। किसी व्रतधारी श्रावक ने ऐसा नियम लिया कि मेरे द्वारा किसी भी साधु की हिंसा करना वर्जित है। अब दूसरी ओर ऐसा हुआ कि किसी व्यक्ति ने आर्हती प्रव्रज्या ग्रहण की। दो-चार-छह वर्ष तक उसका पालन किया और कर्म तथा प्रमादवशात् वह वापस संसार में आ गया, श्रावक बन गया। स्थूल प्राणातिपात व्रत धारक वह

श्रावक यदि उस श्रावक (जो भूतकाल में श्रमण था) की हिंसा करता है तो क्या उसका अहिंसा व्रत खण्डित होता है?

वैसे ही किसी ने ब्राह्मण को नहीं मारने की प्रतिज्ञा की और वह ब्राह्मण यदि वर्ण परिवर्तित कर ले या मरकर तिर्यंच आदि योनि में उत्पन्न हो जाये तो क्या उसके वध से ब्राह्मण को मारने का पाप उस व्यक्ति को लगेगा?

शब्दों में मिठास का अमृत घोलते हुए गुरु गौतम आगे बोले- उदक! वास्तविकता तो यह है कि प्रत्याख्यानी के प्रत्याख्यान का संबंध वर्तमानकालीन जीवों से ही होता है। यदि कोई त्रस जीव मरकर स्थावर बन जाता है या अन्य योनि में उत्पन्न होता है, तब उसकी हिंसा से उसका व्रत खंडित नहीं होता। दूसरी तरफ स्थावर हो चाहे अन्य योनि के जीव मरकर, यदि त्रसकाय में उत्पन्न होते हैं तो श्रावक उनके वध का त्याग अवश्यमेव करता है। अतः जो ब्राह्मण के वध का त्यागी है, वह अन्यान्य पर्यायों में या अन्य शरीर में उत्पन्न हुए उस ब्राह्मण के जीव का यदि घात करता है, तब भी उसका व्रत अक्षय-अखण्ड रहता है।

इतना होने पर भी उदक के अभिमान का हिम पिघला न था। उसने कहा- यदि सभी त्रस जीव एक ही काल में स्थावर हो गये तो श्रमणोपासक का प्रत्याख्यान असफल और निरर्थक हो जायेगा, क्योंकि त्रसकाय के सारे जीव स्थावरकाय में और स्थावरकाय के सारे जीव त्रसकाय में उत्पन्न हो सकते हैं?

उदक! तुम्हारी यह मान्यता अज्ञानता से उपजा कोरा भ्रमजाल है। न भूतो, न भविष्यति, कि सभी त्रस जीव एक साथ स्थावर हो जायें और कोई भी त्रस प्राणी दुनिया में न रहे। यह सही है कि काल

की अपेक्षा से सारे त्रस प्राणी स्थावरकाय में उत्पन्न होंगे, पर दूसरे स्थावर प्राणी भी त्रस में उत्पन्न होंगे, अतः त्रस शून्य संसार की सोच एक कपोल कल्पना है। फिर भी ऐसे त्रस असंख्य हैं, जिनका घात व्रती मनुज नहीं कर सकता, यथा देव-देवी, नारकी आदि।

दूसरी ओर सारे स्थावर प्राणी यदि त्रस बन जायेंगे तो श्रावक का प्रत्याख्यान सर्वप्राणी विषयक हो जाने से उसके सुप्रत्याख्यान होगा। इस प्रकार तुम्हारी मान्यता से तुम्हारे पक्ष का ही खण्डन हो जाता है।

उचित रीति से इन्द्रभूति गौतम के प्रत्युत्तर से पेढाल पुत्र उदक को अपनी गलती ख्याल में आ गयी। फिर ज्ञान के शिखर के सामने तो वह मात्र तलहटी में खड़ा था। ऐसी स्थिति में किसी भी तर्क को स्थान कैसे मिल सकता था!

पराजय उसके अंतर में शूल बनकर चुभ रही थी। महाविजय की जगह ऐसी घोर पराजय से उसका मन भयंकर बेचैन हो गया।

गौतम स्वामी ने अपनी दिव्य-दृष्टि से उसके अंतर्मन की समस्या को पकड़ लिया। पेढाल पुत्र उदक के अन्तर की थाह लेते हुए हृदय का हेत प्रकट किया- हे आर्य! जो मनुष्य पाप-कर्म का क्षय करने के लिये एक तरफ ज्ञान-दर्शन और चारित्र को स्वीकार करता है, पर दूसरी ओर श्रमण आदि की निन्दा, विकथा और टीका करता रहता है, तो वह अपना ही परलोक बिगाड़ता है, फिर भले ही वह स्वयं को अपने मन में निर्दोष, निष्कलंक और निर्मल चारित्रधारी क्यों न मानें?

मौन, किंतु बेचैन चित्त से पेढाल पुत्र उदक गौतम स्वामी की हितशिक्षा सुन रहे थे, पर मन में घोर निराशा और उदासी व्याप्त

थी।

अंत में गणधर गौतम ने प्रखर शब्दों में कहा- जो अपनी क्षुद्र और अहंग्रस्त मनोवृत्ति के कारण पंडित न होने पर भी स्वयं को पंडित मानता है और शास्त्रोक्त आचारनिष्ठ श्रमणों पर झूठा आक्षेप लगाकर बदनाम करता है, तो वह अहंकारी सुगति स्वरूप परलोक एवं उसके कारण रूप संयम का स्वयं ही विनाश कर देता है।

गौतम स्वामी ने बात पूर्ण की और पेढाल पुत्र उदक किसी भी प्रकार का विनय-व्यवहार किये बिना उठकर चल दिया।

इन्द्रभूति गौतम ने सोचा- इतना समझाने पर भी इसका हृदय जागृत नहीं हुआ। अभी भी ये श्रमण मान-अपमान के भावों में बह रहा है। इसे और अधिक समझाना मेरा कर्त्तव्य है।

उन्होंने तुरन्त पेढाल पुत्र उदक को रोका तथा शब्दों में अतिरिक्त वात्सल्य उंड़ेलते हुए कहा- हे आयुष्यमान्! किसी श्रमण-ब्राह्मण से एक भी धर्म वाक्य, हितोपदेश सुनने, सीखने, समझने या जानने को मिला हो तो मानना चाहिये कि इसने जीवन पथ पर उजाला करके मुझ पर उपकार किया है और उपकारी के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करने के साथ-साथ पूज्य बुद्धि से उसका आदर-सत्कार उसी प्रकार करना चाहिये, जिस प्रकार किसी पूज्य देव और देव मंदिर का आदर-सत्कार किया जाता है। यद्यपि पूजनीय पुरुष स्वयं की प्रशंसा नहीं चाहते, फिर भी कृतज्ञ साधक का यह कर्तव्य है कि वह बहुमान करे। तुम कृतज्ञता ज्ञापित किये बिना यों ही चले जा रहे हो। क्या यह उचित व्यवहार है?

इन्द्रभूति गौतम के शब्दों ने जैसे जादू का काम किया।

एक-एक शब्द पेढाल के हृदयालय का स्पर्श कर गया।

सारी बेचैनी पल मात्र में विलीन हो गयी।

पेढाल पुत्र उदक ने समर्पित शब्दावली में कहा- हे महापुरूष! आप से मैंने परमार्थ का रहस्य प्राप्त किया है। ये सारे प्रश्न आज तक अनुत्तरित, अश्रुत, अविज्ञात, अस्मृत, अदृष्ट और अनुपधारित थे। भदन्त! अब मैं इन पर श्रद्धा और प्रतीति करता हूँ।

तदुपरांत क्षमायाचना करते हुए उदक ने कहा- भगवन् गौतम! आज तक मुझे इस प्रकार किसी ने हितशिक्षा दी नहीं और मैंने किसी की शिक्षा सुनी भी नहीं। अत: इस प्रकार का मेरा पवित्र आचरण नहीं बना। अब आपने राह दिखा दी है तो अंगुली थाम कर चलाने का काम भी आपका ही है। कृपा करके मुझे अपने सान्निध्य में स्थान दें। मैं आपके पास प्रव्रजित होने की कामना रखता हूँ। सप्रतिक्रमण चातुर्याम धर्म से पंचयाम धर्म में प्रव्रजित होने की अभीप्सा को साकार कर आप मेरे मनोरथ को सफल करें।

पार्श्वनाथ परम्परा के पेढाल पुत्र उदक निर्ग्रन्थ महावीर की परम्परा के निर्ग्रन्थ बनकर सर्व-गर्व-ग्रन्थियों को काटने लगे। इन्द्रभूति गौतम के हृदय का हेत वाणी के वात्सल्य में बरसा और एक गर्वोन्नत गिरिराज लघुता-नम्रता का सरोवर बनकर कृतज्ञता ज्ञापित करता रहा।

❑ सूत्रकृतांग सूत्र, 2/7/72-74

46.
गौतम और अतिमुक्तक

बहती नदी निर्मल!

पानी अगर प्रवाहित होता रहे तो उसे अपवित्रता का कलंक न लगे। साधु अगर विचरण करता रहे तो शिथिलता का दोष न लगे। परमात्मा महावीर का यह पावन संदेश न केवल उनके सरस्वती कण्ठ से निःसृत हुआ था अपितु पवित्र काया एवं रोम-रोम में बिराजमान सदाचार के द्वारा अभिव्यक्त भी हुआ था।

विचरण करते हुए परमात्मा महावीर एकदा पोलासपुर में पधारे। स्वाध्याय और ध्यान की पवित्र साधना करके तीसरे प्रहर में गणधर इन्द्रभूति गौतम प्रभु-आज्ञापूर्वक गाँव में गौचरी-चर्या के लिये उद्यत हुए।

नगर के ठीक मध्य में एक मंदिर था इन्द्रदेव का। इस परिसर के आस-पास अनेक बालक क्रीड़ा में रत थे। उन बालकों में एक सुकुमार था- अतिमुक्तक।

मन से पवित्र, काया से कोमल और संस्कारों से समृद्ध अतिमुक्तक की दृष्टि क्रीड़ांगन के निकट से गुजरते इन्द्रभूति गौतम पर पड़ी कि वह दौड़ता हुआ तुरन्त उनके पास पहुँच गया। निश्चित ही यह उसकी उत्तम संस्कार निधि का मजबूत सबूत था।

इतना ही नहीं, आकर उसने गौतम स्वामी की अंगुली पकड़ ली और पूछने लगा- आप कौन हैं और इस प्रकार कहाँ जा रहे हैं?

इन्द्रभूति गौतम बोले- वत्स! हम मोक्ष की मंजिल के राही

जैन साधु हैं और अभी हम घर-घर भिक्षाचर्या के लिये जा रहे हैं। हमारी जीवन-चर्या का यह अभिन्न अंग है। लोगों के घर से आहार-स्वीकार करते हैं और उसके द्वारा शरीर-निर्वाह करते हुए अहिंसा, संयम और तप में रत रहते हैं।

– अच्छा! तो आप मेरे घर चलिये। हाथ पकड़कर अतिमुक्तक गौतम स्वामी को अपने घर ले गया।

जैसे ही इन्द्रभूति गौतम आहार-ग्रहण कर प्रत्यावर्तित होने लगे कि अतिमुक्तक ने पूछा- गुरुदेव! आप कहाँ पधार रहे हैं? यहीं पर रुक जाइये ना? यह सुनकर इन्द्रभूति गौतम के मुख पर मंद-मंद मुस्कान छा गयी।

– वत्स! अब हम हमारे गुरुदेव परमात्मा महावीर के पास जायेंगे। मैं उन्हीं का शिष्य हूँ। उनके चरणों में ही मेरे दिन और रैन, नींद और चैन हैं।

– तो क्या मैं भी आपके साथ चलूँ।

इस प्रश्न के उत्तर में 'ना' को भला कहाँ स्थान था। छोटा सा बालक; मासूमियत और कोमलता से परिपूर्ण उसका निर्दोष, मधुर संवाद; बोली भी मधुर, चेहरा भी सुंदर। गौतम स्वामी के हाथ में पात्रादि देखकर वह बोला- गुरुदेव! यह भार मुझे दे दीजिये। आपको उठाने में कष्ट हो रहा होगा।

– नहीं कुमार, यह तो हमारा धर्म है। फिर यह पात्र उसे ही दिया जा सकता है, जो साधु हो। तुम हमारे जैसे नहीं हो, इसलिये मैं तुम्हें ये पात्र नहीं दे सकता।

क्षण भर के लिये अतिमुक्तक सोच में पड़ा, फिर बोला- गुरुदेव! यदि मैं आपके जैसा बन गया, तो क्या आप मुझे ये पात्र दे

सकेंगे?

– हाँ वत्स! जरूर दे सकेंगे।

पोलासपुर के उद्यान की ओर कदम बढ़ रहे थे और बाल अतिमुक्तक का हृदय आज कुछ अनूठी अनुभूति में डूबा हुआ था।

इन्द्रभूति गौतम का अप्रतिम वात्सल्य उसके रोम-रोम में बस गया था। एक अनजाना आकर्षण उसे उनके निकट ले जा रहा था।

एक तरफ उसके मन-मंदिर में भव्य पुरुष गौतम स्वामी बस गये थे तो दूसरी ओर एक जिज्ञासा उभरती जा रही थी- ये गुरुदेव! कितने प्यारे, कितने न्यारे। अहा! ये जब मुझे इतने ज्यादा अपनत्व के सरोवर में डुबा रहे हैं, तब इनके गुरुदेव कितना प्रेम, दुलार और स्नेह देंगे।

मन तो जैसे समर्पण की गीतिकाएँ रच रहा था-

गुरु का सिर पर हाथ रहे!
जीवन भर तेरा साथ रहे!
चरणों में जीवन घोंसला,
और क्या मैं माँगूं भला!!
तुम्हीं नाव की पतवार हो!
तुम्हीं प्राणाधार हो!!
स्नेह की सदा बरसात रहे!
जीवन भर तेरा साथ रहे!!

कुछ समय बाद वह परमात्मा महावीर के सामने था। यद्यपि भगवान किसी भी परिचय के मोहताज कहाँ होते हैं; फिर भी इन्द्रभूति गौतम ने परिचयात्मक संवाद में कहा- वत्स अतिमुक्तक! ये हैं मेरे गुरुदेव.... मेरे भगवान....! कहते हुए इन्द्रभूति गौतम गद्‌गद् हुए

बिना न रहे, क्योंकि प्रभु तो उनकी सांसों की सरगम और जीवन की सुवास थे।

अतिमुक्तक की जीवन-राहों में जैसे अन्तर का प्रकाश बिखर गया; क्योंकि परमात्मा तो जलते हुए दीप और तेजस्वी सूरज के समान थे।

अब तो जैसे समय उन पलों को बधाने जा रहा था, जो पल तकदीर वाले को ही नसीब होते हैं।

वैरागी राजकुमार का हृदय वीतराग पद की अभ्यर्थना की ओर मुड़ गया। वह शीघ्र ही माता-पिता की आज्ञा का कवच धारण कर वह गणधर गौतम का बाल शिष्य बन गया।

एक बार वर्षा ऋतु में वह सहवर्ती अग्रज मुनिवरों के साथ बहिर्भूमि गया हुआ था। वर्षा में उफनते नदी-नाले, मुनि के हाथ में पात्र, उन्हें अपना बचपन याद आ गया। इतना ही नहीं, बचपन की मधुर स्मृतियों में डूबे तो ऐसे डूबे कि संयम मर्यादा को विस्मृत कर बैठे। हाथ में रहे हुए पात्र को पानी में तिराते हुए कहने लगे- **'मारी नाव तिरे रे मारी नाव तिरे।'**

कुछ देर में अग्रज मुनियों ने उन्हें जगाया- अरे मुनिवर! ये क्या कर रहे हो? तुम्हें कुछ भान है कि नहीं?

तुमने प्राणातिपात विरमण महाव्रत का प्रत्याख्यान किया है, जबकि सचित्त जल में पात्र तिराकर आप्कायिक जीवों की हिंसा कर रहे हो।

दूसरा मुनि बोला- अरे! गणधरवर्य गौतम स्वामी ने भी ऐसा कैसा बोध दिया कि ये नाव तिरा रहे हैं।

तीसरा मुनि मुखर हुआ- मुनिवर! गणधरवर्य के संदर्भ ऐसा

बोलकर अपनी आत्मा को क्यों भव गर्त में गिरा रहे हो। वे तो श्रमणेन्द्र हैं। उनकी होड़ भला कौन कर सकता है? उन्होंने कोई विशिष्ट गुण इस अबोध बालक में जाना है, तभी तो बाल मुनि को संयम का चोला धारण करवाया है।

अतिमुक्तक तो अपराध भाव से भरे हुए थे।

आँखों में आँसू! हृदय में पश्चात्ताप! मन में तीव्र खेद!

परमात्मा ने फरमाया- जा अतिमुक्तक! इरियावही कर ले, तेरे पाप का मैल धुल जायेगा।

गहरी वेदना! मैंने अप्काय के जीवों की विराधना की, इसका भारी पश्चात्ताप! और इरियावही सूत्र के स्वर्णिम शब्दाक्षरों 'पणग दग.... पणग दग' पर चिन्तन की आत्मधारा बह चली। .... विशुद्धतर, विशुद्धतम अध्यवसाय। पश्चात्ताप के पावक में तपकर आत्मा कुंदन की भांति निखरने लगी, कर्ममल विलग होने लगा। मुनिवर की आत्मधारा इतनी घनीभूत हुई कि क्षपक श्रेणी में आरोहण.... और पल भर में अतिमुक्तक घाती कर्मों के बंधन से मुक्त हो गये। उनकी आत्मा कैवल्य की रश्मियों में जगमगा उठी।

तत्काल प्रमाणित हो गया कि गणधर इन्द्रभूति आत्मगुणों के पारखी महापुरुष हैं। लब्धि निधान गौतम का कुछ पलों का साथ उन्हें संयम.... केवलज्ञान और मुक्ति के सर्वोच्च शिखर पर ले गया।

बधाई अतिमुक्तक की मुक्ति को!

बधाई इन्द्रभूति गौतम की युक्ति को!

❑ अन्तकृद्दशा सूत्र

47.
भगवान के मोक्षगामी शिष्य कितने?

इन्द्रभूति गौतम मानो साधना के पर्याय स्वरूप थे। उच्च पद और उत्तम सुयश के बीच भी वे अपने लक्ष्य और पुरुषार्थ में अप्रमत्त रहते थे।

बड़ी उम्र और चार ज्ञान के धारक होने पर भी वे हमेशा स्वाध्याय, ध्यान, सेवा, सत्संग और भावना में अपनी शक्तियों का प्रयोग करते।

उपवास जैसा बाह्य तप एवं ध्यान और स्वाध्याय जैसे आंतरिक तप उनके जीवन की खुराक थे।

एक बार ऐसा हुआ कि इन्द्रभूति गौतम अन्तर की गहराइयों में उतरकर शान्ति के मोती बटोर रहे थे। ऐसे में महाशुक्र देवलोक के दो देव अपनी शंका को समाहित करने के लिये प्रभु चरणों में उपस्थित हुए।

अपनी जिज्ञासा को निवेदित करने से पूर्व भावोल्लास की भीनी सुगंध से परिपूर्ण वंदना की।

अपनी जिज्ञासा को शब्दाकार देने के बजाय उसे मन से ही प्रभु के समक्ष प्रकट की।

अब परमात्मा तो ठहरे अंतर्यामी। घट-घट की बात जानने वाले ज्योतिर्मय महावीर ने मन से ही समाधान भी कर दिया।

इधर गौतम स्वामी ध्यान से बाहर आये। उनके मन में प्रश्न की तरंग उठी- ये देव कौन हैं? परमात्मा के चरणों में किस कारण

उपस्थित हुए हैं?

वे तुरन्त निज आसन से उठे और प्रभु के सान्निध्य में आकर अपनी शंका का समाधान चाहा।

परमात्मा इन्द्रभूति गौतम के मन की बात का सीधा-साधा प्रत्युत्तर देते हुए बोले- गौतम! तुम्हारे प्रश्न का उत्तर तुम उनसे ही प्राप्त कर लो।

गौतम स्वामी के प्रश्न का उत्तर देते हुए वे देव बोले- हे भगवन्! हम महाशुक्र देवलोक के देव हैं। यहाँ परमात्मा के पास मन में रमती शंका को समाहित करने आये हैं। हमारी शंका यह थी कि परमात्मा के कितने शिष्य मोक्ष में जायेंगे।

- हम शंका को शब्दों में रूपायित करें, उससे पहले ही त्रिकालज्ञ प्रभु के ज्ञान-दर्पण में हमारी मानसिक जिज्ञासा लहरा रही थी। परमात्मा ने एक भी शब्द का उच्चारण किये बिना हमें मन से ही शंकामुक्त कर दिया।

- तो फिर प्रभुश्री ने क्या फरमाया? इन्द्रभूति गौतम मुखर हुए।

- भगवन्! परमात्मा ने बताया कि हे देवानुप्रिय! मेरे सात सौ शिष्य समस्त दु:खों का क्षय करके शाश्वत सिद्धि सुख का वरण करेंगे।

गौतम स्वामी का शीष भावी मुक्त आत्माओं के चरणों में श्रद्धा से झुक गया।

48.
सूर्याभदेव का पूर्वभव

भगवान महावीर वायु की भांति अप्रतिबद्ध विहारी थे। पवन को कोई बांध सके तो प्रभु को बांधे। हाँ, उनके विहार में विश्व कल्याण की ही मंगलमयी भावना रमण करती थी।

एक बार परमात्मा महावीर आमलकप्पा नगरी में पधारे। उस समय सूर्याभदेव अपनी ऋद्धि एवं सिद्धि के साथ परमात्मा के दर्शन करने के लिये उपस्थित हुआ।

समस्त पर्षदाएँ उसकी द्युति, ऋद्धि और दिव्य वैभव को देखकर अभिभूत हो उठी।

जनसमूह के मन में तरंगित जिज्ञासा का समाधान पाने के लिये गणधर इन्द्रभूति प्रभु के चरणों में समुपस्थित होकर बोले- भंते! यह देव कौन है और किस कारण इतनी दिव्य, अनुपम और भावाभिभूत करने वाली ऋद्धि को उपलब्ध हुआ है?

परमात्मा ने कहा- गौतम! बहुत समय पहले कैकय नामक देश में प्रदेशी नामक राजा राज्य करता था। यद्यपि वह सत्य का जिज्ञासु था, पर उसके मन में आत्म-अस्तित्व के संदर्भ में जो शंका थी, उसका यथोचित समाधान कोई भी कर नहीं पाया था।

मिथ्यात्व के अंधेरे में भटकते राजा प्रदेशी के जीवन में सद्भाग्य का सूर्योदय हुआ, परिणामतः पुरुषादानीय परमात्मा पार्श्वनाथ के श्रमण केशी स्वामी के साथ उनका विचार-विमर्श हुआ।

राजा प्रदेशी की ठोस धारणा थी कि इस विश्व में आत्मा

नामक किसी तत्त्व की सत्ता नहीं है।

इधर केशी स्वामी की न केवल आत्मा के अस्तित्व के सम्बन्ध में श्रद्धा थी अपितु वे शास्त्रों के पारगामी, विद्वान् और समयज्ञ मुनिप्रवर थे। तत्त्व के विस्तार-संक्षेप, उदाहरण-दृष्टान्त, तर्क-प्रमाण, निश्चय-व्यवहार और सिद्धान्त-शास्त्र के समझ की उनमें अलौकिक प्रतिभा थी। इतना ही नहीं कि वे ज्ञानी थे, अपितु किसी भी सूत्र-सिद्धान्त के प्रतिपादन में भी वे अतुलनीय थे।

केशी श्रमण ने अनेक दलीलों, दृष्टान्तों के द्वारा प्रदेशी राजा की आत्मा में आत्म-अस्तित्व के प्रति आस्था के बीजों को न केवल अंकुरित किया अपितु उसके जीवन को धर्माभिमुखी बनाने में महती भूमिका निभायी।

इस अटल और अप्रतिम आस्था के बल से वह प्रदेशी राजा मरकर देवलोक में देव रूप में समुत्पन्न हुआ और गौतम! वह देव कोई और नहीं अपितु ये सूर्याभदेव ही है, जो यहाँ दिव्य-भव्य ऋद्धि-समृद्धि के साथ प्रस्तुत हो रहा है।

सूर्याभिदेव की ऋद्धि में जिनशासन, जिनेश्वर परमात्मा, जिनाज्ञा और जिन प्रवचन के प्रति जो श्रद्धा और बहुमान की सुधा-धारा प्रवाहित हो रही थी, उसे देखकर गौतम आनंदित हुए बिना न रहे।

एक तरफ सूर्याभदेव की निष्काम भक्तिभावना, दूसरी ओर उसमें अलिप्त एवं सहज भगवान महावीर, दोनों की दिव्य भावनाओं का संगम इन्द्रभूति गौतम की श्रद्धा-वृद्धि का हेतु बन गया।

49.
मुनि सेवा का मधुर फल

गौतम गणधर की जिज्ञासा आकाश से भी अनन्त और सागर से भी गहरी थी।

परमात्मा से महात्मा गौतम ने पूछा- भंते! जो साधु सम्यक्ज्ञानी और सदाचारी है, उस अभ्यासी और विशिष्ट मेधावी साधु की सेवा करने वाले मनुष्य को क्या फल मिलता है?

महावीर- गौतम! सज्जन की सेवा का सुफल शास्त्र श्रवण है।

गौतम - भंते! शास्त्र श्रवण से क्या फल मिलता है?

महावीर - गौतम! इसका फल ज्ञान की प्राप्ति है।

गौतम - भंते! ज्ञान का फल क्या?

महावीर - गौतम! ज्ञान से विज्ञान का बोध। विज्ञान यानी हेय, ज्ञेय और उपादेय का विशेष विवेक।

- हेय : छोड़ने योग्य
- ज्ञेय : जानने योग्य
- उपादेय : अपनाने योग्य

गौतम - भंते! विज्ञान का क्या फल होता है?

महावीर - गौतम! जो आत्मा विज्ञान (विवेक) को प्राप्त करता है, वह प्रत्याख्यानपूर्वक पाप प्रवृत्तियों का त्याग करता है।

गौतम - भंते! प्रत्याख्यान करने का परिणाम क्या है?

महावीर - गौतम! जो जीव प्रत्याख्यान धारण करता है, वह संयम को प्राप्त करता है।

गौतम – भंते! संयम का सत्परिणाम क्या?

महावीर – गौतम! संयम के द्वारा आश्रव द्वार (पाप कर्मों के आने का द्वार) बंद हो जाता है।

गौतम – भंते! आश्रव द्वार के निरोध से क्या लाभ होता है?

महावीर – गौतम! जो जीव आश्रव द्वारों का निरोध करता है, वह शीघ्रमेव तप की पवित्र अग्नि में तपता है।

गौतम – भंते! तप करने का फल क्या?

महावीर – गौतम! तप की अग्नि में तपने से भव-भव के कठोर, निबिड़ और महाकर्म विनष्ट हो जाते हैं।

गौतम – भंते! कर्म नष्ट होने से क्या होता है?

महावीर – गौतम! इससे मन, वचन और काया की प्रवृत्तियों पर अंकुश होता है।

गौतम – भंते! योगत्रयी पर नियंत्रण होने से क्या सिद्ध होता है?

महावीर – गौतम! इससे जीव कर्म मुक्त होकर निर्वाण पद को प्राप्त करता है।

गौतम – भंते! इससे जीव क्या कहलाता है?

महावीर – गौतम! इससे जीवात्मा सिद्ध-परमात्मा कहलाता है।

इस प्रश्नोत्तर के माध्यम से सज्जन और संत-सेवा से जो सुफल प्राप्त होता है, उसका अत्युत्तम दिग्दर्शन परमात्मा महावीर महात्मा गौतम को करवाते हैं और उपस्थित श्रोतावृंद आनन्द तथा धन्यता की अनुभूतियों में डूब से जाते हैं।

❑ भगवती सूत्र

50.
भगवान की अनेकान्त-धारा

गणधर इन्द्रभूति गौतम के रोम-रोम में जिन प्रवचन के प्रति अनुपम बहुमान का भाव था। उन्हें जब भी कोई शंका होती, वे तुरन्त परमात्मा के अवग्रह में उपस्थित होकर निज शंकाओं का समाधान प्राप्त करते।

गौतम स्वामी ने जो प्रश्न किये, वे किसी एक विषय से सम्बद्ध न होकर सर्वक्षेत्रावगाही थे।

परमात्मा से गौतम स्वामी ने पूछा- हे भगवन्! कुछ अन्य सम्प्रदाय वाले ऐसा दावा करते हैं कि शील ही श्रेय है। दूसरे सम्प्रदाय वाले इसे अमान्य ठहराते हुए कहते हैं कि श्रुत ही श्रेय है। तब तीसरे मतानुयायी कहते हैं कि अन्योन्य निरपेक्ष श्रुत और शील, दोनों ही श्रेयस्कर हैं तो आप फरमाये भगवन्! इन तीनों में से किसका कथन समीचीन है?

परमात्मा महावीर वचनामृत का झरणा बहाने लगे- गौतम! इस जगत् में चार प्रकार के पुरुष हैं-

कुछ शील सम्पन्न हैं परन्तु श्रुत सम्पन्न नहीं.....।

कुछ श्रुत सम्पन्न हैं परन्तु शील सम्पन्न नहीं.....।

कुछ श्रुत और शील, दोनों से सम्पन्न हैं.....।

कुछ श्रुत और शील, दोनों से सम्पन्न नहीं हैं.....।

प्रभु के श्रीमुख से झरते मधुर ज्ञान सुधारस में अवगाहन और उसका आस्वादन करते हुए इन्द्रभूति गौतम नम्रीभूत होकर

बोले- प्रभो! इसे विशेषाधिक स्पष्ट करें।

- गौतम! श्रुत से जो पुरुष सम्पन्न नहीं हैं परन्तु शील से हैं, अर्थात् वे पाप कार्य से ऊपर उठ चुके हैं, पर धर्म से अनभिज्ञ हैं; अतः अंशतः आराधक हैं।

- जो पुरुष श्रुतवान् हैं पर शीलवान् नहीं, वे धर्म को जानते हुए भी पाप में रत हैं; अतः वे अंशतः विराधक हैं।

जो पुरुष श्रुत और शील, उभयतः सम्पन्न हैं, अर्थात् धर्म को जानते हुए तदनुरूप आचरण भी करते हैं, अतः वे सर्वांश में आराधक हैं।

अंतिम चतुर्थ भंग वाले पुरुष, जो न तो श्रुतवान् हैं, न शीलवान् हैं, अर्थात् पाप से निवृत्त नहीं हैं, इसके साथ-साथ धर्म से भी अनभिज्ञ हैं; अतः वे सर्वांश में विराधक हैं।

कोई भी रथ दो पहियों पर ही चलता है.....

दो पटरी पर ही गाड़ी दौड़ा करती है.....

धर्म भी दो पटरी पर ही चलता है, एक पटरी है ज्ञान की, दूसरी पटरी है- क्रिया की!

इसलिए शास्त्रकारों ने कहा- **'ज्ञान क्रियाभ्याम् मोक्षः।'**

श्रुत - ज्ञान।

शील - क्रिया।

आराधक - आस्तिक, धार्मिक।

विराधक - नास्तिक, अधार्मिक।

51.
धन्य वह, जो सेवा करे

परमात्मा महावीर का दृष्टिकोण अत्यन्त विशाल था। उन्होंने आवश्यक सूत्र के मूल पाठ में महामोहनीय कर्म बंध के जो तीस कारण बताये हैं, उनमें से षष्टम् कारण की व्याख्या करते हुए कहते हैं-

गौतम! जो साधु अनुकूलता एवं सशक्त होने पर भी बीमार की सेवा नहीं करता अथवा प्रेरणापूर्वक सेवा नहीं करवाता, वह शठ, मायावी एवं कलुषित मनोवृत्ति वाला महाघोर परिणामी साधु महामोहनीय कर्म का घोर बंध करता है।

- भंते! जो साधु बीमार की सेवा करता है, वह धन्य है अथवा जो वीतराग के सच्चे स्वरूप को जानता है, वह धन्य है? गणधर इन्द्रभूति गौतम सहजतः प्रश्नवाचक मुद्रा में प्रस्तुत हुए।

- गौतम! सेवा और भगवद् स्वरूप, दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। जैसे किसी पन्ने के ऊपर के भाग को उठाये तो यह सम्भव नहीं कि नीचे का भाग उसके साथ न आये।

- जो ग्लान की सेवा करता है, वही मेरे यथार्थ स्वरूप को जानता है और जो मेरे यथार्थ स्वरूप को जानता है, वही ग्लान की सेवा करता है।

- भंते! ऐसा आप किस आधार पर कहते हैं कि जो ग्लान की सेवा करता है, वह मेरे यथार्थ स्वरूप को जानता है?

गोयमा! जे गिलाणं पडियरइ से मां दंसणेण पडिवज्जइ,

जे मां दंसणेण पडिवज्जइ से गिलाणं पडियरइ॥

– गौतम! जो मेरे सच्चे स्वरूप जानता है, वह ग्लान की सेवा न करे, यह कदापि सम्भव नहीं। अरिहंतों की आज्ञा का पालन करना ही उनके यथार्थ स्वरूप को जानना है और यथार्थ स्वरूप को जानने वाला ग्लान की सेवा अवश्यमेव करता है। अतः अरिहंतों की आज्ञा का पालन करने से अरिहंतों के निर्विकार, सम्यक् और संपूर्ण स्वरूप का बोध होता है। इसलिये गौतम! जो बीमार की सेवा करता है, वह मुझे दर्शन से प्राप्त करता है; और जो मुझे दर्शन से प्राप्त करता है, वह बीमार की सेवा करता है।

प्रभु के द्वारा प्ररूपित-प्रज्ञप्त धर्म में सेवा परायणता को उच्च कोटि का स्थान प्राप्त है। आचार्य, उपाध्याय आदि दस प्रकार की वैयावच्च में से एक बीमार साधु की वैयावच्च भी है।

भगवान महावीर ग्लान साधु की वैयावच्च को आत्म (परमात्म) दर्शन का कारण बताते हुए वैयावच्च, सेवा भावना और सेवा परायणता को आत्म स्वरूप में रुकने, ठहरने और उसे पाने का रास्ता बताते हैं।

इन्द्रभूति गौतम की इस तत्त्व में परम शुद्ध श्रद्धा थी। निश्चित ही सेवा का महत्व जो परमात्मा ने फरमाया, वह आचार में अभिव्यक्त करने योग्य है।

52.
पाप न करिये कोय

परमात्मा महावीर के अणु-अणु में मानो करुणा का झरणा बहता था। सच में ऐसा लगता है कि जगत के कल्याण की उदात्त भावना उन्हें तीर्थंकर से भी अधिक उच्च स्थान दे जाती है।

वर्धमान भगवान विहार करते हुए एक बार वणिक् ग्राम में पधारे। मित्रप्रभ राजा और देवी रानी प्रभु चरणों में उपस्थित हुए। प्रभु ने द्वादश पर्षदा को धर्म का उपदेश दिया, जिसे श्रवण कर जनसमूह आनंद से आप्लावित हो गया।

देशना के उपरान्त प्रभु के प्रधान शिष्य इन्द्रभूति गौतम प्रभु आज्ञापूर्वक गाँव में गौचरी के लिये पधारे।

उन्होंने कोलाहल से भरे बाजार में एक करुणाजनक दृश्य देखा- कोई पुरुष राजपुरुषों के द्वारा बंदी बनाया गया है, जिसके पाँवों में बेड़ियाँ और हाथों में हथकड़ियाँ डाली गयीं और हाथ-पाँव का छेदन-भेदन किया गया है। उस महादु:खी को ऐसी दुर्गम स्थिति में देखकर इन्द्रभूति गौतम का मन विशेषत: वैराग्य से संपुष्ट-संयुक्त हुआ।

ओह! संसार का ऐसा विचित्र स्वरूप!

ओह! पाप कर्म का ऐसा घोर-कठोर परिणाम!

संवेग और निर्वेद रस से उनकी आत्मा छलक उठी।

भिक्षा लेकर इन्द्रभूति गौतम प्रभु के उपपात में पहुँचे तथा इर्यापथिकी पूर्वक भक्तपान की आलोचना करके प्रश्नायित हुए-

भंते! आप तो त्रिकालज्ञ हैं। कृपा करके स्पष्ट करें कि वह पुरुष किस कारण दु:खी हुआ?

– गौतम! तुम उसका पूर्व भव सुनो। पूर्व भव में वह एक गोपालक पुत्र था।

पिता जीवदया प्रेमी और करुणा वत्सल; पर पुत्र गोपासक, दुष्ट बुद्धि वाला, निर्दयी, पापी और हिंसक था। उसे उसी में सुख मिलता था।

एक बार अर्धरात्रि में जब सब लोग निद्रालीन हो गये, तब वह हाथ में तीक्ष्ण हथियार लेकर गौशाला में पहुँचा और गायों की पूंछ, जीभ, नाक, आँख आदि का छेदन करने लगा। इस प्रकार पाँच सौ वर्षों तक महापाप करता रहा और घोर कर्म परिणाम स्वरूप दूसरी नरक में नारकी बन अनिष्ट पीड़ाओं को सहता रहा। नरक के अनर्थकारी दु:खों को लम्बे समय तक सहते हुए भी उसके महापापों का अन्त न आया और मृत्यु प्राप्त कर वहाँ से वह अगले भव में सप्त व्यसनों में अनुरक्त बना। चौर्य कर्म के फलत: राजाज्ञा से मृत्यु-दण्ड का महादु:ख सहकर प्रथम नारकी में दीर्घकाल पर्यन्त हृदय विदारक दु:खों को सहता रहा। वहाँ से मरकर इस भव में नपुंसक बना है तथा भयावह दु:खों को झेल रहा है।

इस कारण धर्मवन्त को अबोध पशु-पक्षी आदि के आँख, नाक, कान आदि के छेदन रूप महाघातकारी निर्लांछन कर्म न करने चाहिए, न करवाने चाहिए।

– हे गौतम! पाप में क्रूर आनंद की बुद्धि रखने के कारण ही वह पुरुष दु:खों की आग में सुलग रहा है।

समुपस्थित श्रद्धालुजन पाप-मुक्ति के प्रति प्रेरित हुए और

गौतम स्वामी चिन्तन करते रहे। दया, करुणा और मैत्री के अमृत से सिंचित हृदय प्रतिक्षण निर्दोष सुख में भीगता है, पर जिस हृदय में पाप, हिंसा और क्रूरता का हलाहल भरा है, वह हजारों भव तक गरीबी, अनाथता, इन्द्रियहीनता, अपयश को प्राप्त करता है।

पाने योग्य नहीं, यह संसार!

रहने योग्य नहीं, यह संसार!

सहेजने योग्य नहीं, यह संसार!

वैराग्य के अमृत कणों से इन्द्रभूति गौतम अपनी वीतरागता को और अधिक पुष्ट करते रहे।

❑ गौतम पृच्छा

53.
मृगापुत्र का प्रसंग

परमात्मा महावीर मृगग्राम में प्रवास कर रहे थे। समवसरण में द्वादश पर्षदा जिनवाणी का अमूल्य रसपान कर परमानंद में संचरण कर रही थी।

अचानक रंग में भंग पड़ा।

कोई दुर्भागी पुरुष वहाँ उपस्थित हुआ, जिसके न हाथों में अंगुलियाँ थीं, न पाँवों में। येन केन प्रकारेण आगत जन्मांध पुरुष को देखकर लोग उसकी निंदा करने लगे।

इन्द्रभूति गौतम की जिज्ञासा प्रस्तुत हुई- हे भगवन्! इस पुरुष ने पूर्व भव में बहुविध पाप कर्म किये होंगे, तभी तो कुष्ठ रोग ने इसके शरीर को छलनी-छलनी कर दिया है। दुर्गन्धित शरीर, शरीर से बहता मवाद और मवाद पर भिनभिनाती मक्खियाँ। इतनी भयावह दुर्गंध कि श्वास लेना ही दुष्कर हो जाये।

परमात्मा की दिव्यवाणी का उद्घोष हुआ- हे गौतम! इसका दु:ख तो एक तरह से बहुत कम है। इससे अधिक, अनिष्टकर, अमनोज्ञ और असह्य वेदना सहने वाला एक आश्चर्यकारी प्राणी इसी ग्राम में है।

इसी ग्राम में राजा विजय और रानी मृगावती का पुत्र मृगापुत्र। यद्यपि वह राजपुत्र है तथापि पूर्व कर्मोदयवशात् वह अतीव दु:खी और नपुंसक है।

एक तरह से शरीर मात्र मांस का पिण्ड है; जिसमें न आँख

है, न कान है, न जीभ है, न होंठ है, न नाक है, न गला है। इसी प्रकार न दो हाथ हैं, न दो पाँव हैं। उसके शरीर में आठ नाड़ियाँ हैं, उनसे भी भयंकर रक्त आदि बहता रहता है। उसके शरीर से प्रतिक्षण ऐसी दुर्गंध का प्रादुर्भाव होता है कि उसके पास खड़ा भी न रह सके। इस प्रकार वह यहीं नरक की महावेदना और दुःखों का अनुभव कर रहा है।

करुणाजनक वृत्तान्त सुनकर इन्द्रभूति गौतम के हृदय में भाव आया कि मैं जाकर उसे प्रत्यक्ष देखता हूँ।

भगवान तो सर्वज्ञ थे। गौतम स्वामी आज्ञा-प्रदान हेतु निवेदन करते, उससे पूर्व ही प्रभु ने कहा- गौतम! यदि तुम्हारे चित्त में कुतुहल है तो वहाँ जा और देख कर आ कि कर्म की लीला कितनी चित्र-विचित्र है। कभी सुखों का साम्राज्य तो कभी दुःखों की परंपरा। कर्म हैं ही जटिल और कुटिल।

परमात्मा का आदेश प्राप्त कर इन्द्रभूति गौतम राजा के घर पर पहुँचे। प्रधान गणधर को देखकर प्रसन्नवदना मृगावती बोली- भगवन्! आप हमारे घर पर पधारे, एक तरह से जैसे कल्पतरू हमारे गृहांगन में प्रकट हुआ। आज हमारे भाग्य खिल गये।

भगवन्! आप कैसे पधारे, कृपया आशय प्रकट करें। विजय नृप ने मन की बात कही।

अपने उद्देश्य को प्रकट करते हुए गौतम स्वामी मुखर हुए- हे राजन्! मैं तुम्हारे पुत्र को देखने के लिए आया हूँ। इसके सिवाय अन्य कोई भी कार्य नहीं है।

राजा ने अपने चारों पुत्र दिखाये, उनसे वंदन करवाये पर जब पञ्चम पुत्र के दर्शन नहीं करवाये, तब गौतम स्वामी बोले- हे

राजन्! तुम्हारा जो मांस पिण्डवत् पाँचवाँ पुत्र है, उसे दिखाओ।

साश्चर्य राजा-रानी एक दूसरे के सामने देखने लगे। गौतम स्वामी ने उनके आश्चर्य को थामते हुए कहा- आप आश्चर्य में हैं कि अप्रकट-गुप्त यह वृत्तान्त हमें कैसे ज्ञात हुआ? सर्वज्ञ प्रभु वीर जिनेन्द्र ने यह वृत्तान्त फरमाया, इसी कारण मैं तुम्हारे पंचम पुत्र के संदर्भ में पृच्छना कर रहा हूँ।

मृगावती रानी परमात्मा की सर्वज्ञता पर न्यौंछावर हो गयी। चलिये भगवन्! मैं आपको पंचम पुत्र के पास ले चलती हूँ।

आगे-आगे रानी मृगावती और पीछे-पीछे इन्द्रभूति गौतम। भूमिगृह में गौतम स्वामी प्रवेश करें, उससे पहले रानी बोली- भगवन्! अपने मुख-नासिका पर मुखवस्त्रिका का प्रयोग कीजिये, अन्यथा वहाँ की भयंकर सड़ांध-दुर्गन्ध में पल भर भी रुकना कष्टप्रद होगा। इन्द्रभूति गौतम ने उक्त निवेदन के अनुसार वस्त्र से नासिका तथा मुख को आवृत्त कर दिया।

भूमिगृह का द्वार खोला और जैसे दुर्गन्ध के फव्वारे छूटने लगे। ज्योंहि गौतम स्वामी ने लोष्टक-मांस पिण्ड रूप राजपुत्र को देखा, अनेक भाव उनके हृदय धरातल पर उभर आये।

ओह! परमात्मा की सर्वज्ञता! जैसा कहा, वैसा ही दु:खप्रदायक जीवन।

ओह! कर्म किसी को छोड़ते नहीं, इसलिये जीव तूं धर्म की आराधना कर।

अरे! इस जीव के घोर-कठोर दु:ख के दिन और रात्रियाँ कब पूरी होंगी?

शरीर की अनित्यता और कर्म की विकटता के चिंतन से

भीगे इन्द्रभूति गौतम प्रत्यावर्तित होकर प्रभु की सन्निधि में पहुँचे।

हे भगवन्! इस मृगापुत्र ने पूर्वजन्मों में ऐसे कौन से महाकठोर पाप कर्म किये हैं, जिनके कारण इस प्रकार अत्यन्त वेदना प्राप्त कर रहा है।

सुनो गौतम!

शतद्वार नगर का राजा नरपति। उसका विजयवर्धन नामक सारथी था। राजकृपा से विजयवर्धन पाँच सौ गाँवों का अधिकारी बना।

विजयवर्धन पहले से ही हृदय से कठोर और विचारों से हिंसक, रौद्र परिणामी था। पहले से ही बंदर की उछलकूद और अब उसके हाथ में भांग आ जाये तो उसकी चंचलता को कोई कैसे थामे, वैसे ही अधर्मी, मिथ्यात्वी और हिंसक विजयवर्धन के हाथ में सत्ता आते ही वह और ज्यादा सितम ढाने लगा। प्रजा को सताने लगा।

लोगों के पास पहले से ही धन का अभाव, ऊपर से अधिक कर देने का दबाव रहता। कर नहीं मिलता तो उनकी सम्पत्ति को छीन लेता। कभी नये-नये करों की स्थापना करके एक तरफ महापरिग्रह के पाप को बढ़ाता तो दूसरी ओर उनका शोषण करके उनकी पाप-दुआएँ लेता।

कभी लोगों पर झूठे कलंक लगाकर उन्हें मारता, पीटता, काराग्रह में डलवाता और सारा धन लूट लेता। ऐसी पाप बुद्धि से सारे लोगों को उसने निर्धन, बेरोजगार और महादुःखी कर दिया।

लम्बे काल के बाद आखिर उसके पाप का घड़ा भर गया। अब उसके फूटने में देर नहीं थी।

उसी भव के पापों ने उस पर महा-आक्रमण किया। कोई

एक नहीं, सोलह-सोलह रोग शरीर को छलनी करने लगे।

खांसी, दमा और ज्वर ने घेर लिया।

कुक्षिशूल और भगन्दर ने बरबाद कर दिया।

अजीर्ण की वेदना से वह छटपटाने लगा।

आँख और कान की पीड़ा सताने लगी।

मुखशूल, वेग और वात ने प्रतिक्षण दु:खी कर दिया।

महाभयंकर वेदना के पश्चात् आर्त्त ध्यान एवं रौद्र ध्यान में मरकर प्रथम नरक का निवासी बना।

वहाँ असंख्य वर्ष पर्यन्त पाप कर्मों का फल भोगकर वर्तमान में विजय राजा और मृगावती रानी का पुत्र बना।

गौतम! पूर्वोपार्जित कर्मों ने अभी भी मृगापुत्र का पीछा छोड़ा नहीं है। अत: राजकुल में जन्म लेकर भी इन्द्रियहीन, नपुंसक और दु:खी बना।

पाप कर्मों का ऐसा दुष्फल सोचकर धर्मात्मा को करुणा, परोपकार और अहिंसा का जीवन जीना चाहिये। अकृत्य का सर्वथा त्याग करना चाहिये।

पूर्वभवों का वृत्तान्त सुनकर गौतम स्वामी काम-भोग, विषय-सुख और संसार की अनिष्टता का चिंतन करते रहे।

❑ विपाक सूत्र, अ. 1

54.
मैं तो तेरी छाया

समय अपनी गति से प्रवाहित होता है। उसमें न किसी का आक्षेप हो सकता है, न कोई हस्ताक्षर। बीतना, लगातार बहना और वापस न लौटना, यह समय की शाश्वत स्वाभाविक स्थिति है।

बाल वर्धमान कुमार आज जगत् के उच्च आदर्श-मानक पर प्रतिष्ठित होकर महावीर नाम से जन-जन में विख्यात हो चुके थे; तो गणधर इन्द्रभूति गौतम अपने विनय-विवेक तथा सुन्दर-मधुर आचरण, समर्पण और विचरण से भारत भूमि को जीवन-कला का संगीत सिखा रहे थे। एक दिन वह था, जब श्रमण महावीर जंगलों में साधना के उन्नत सोपानों की ओर गति-प्रगति कर रहे थे, एक समय वह आया जब वे जिनपति बनकर सर्वमान्य, सर्वपूज्य और सर्ववंद्य बन गये और अब उनके जीवन का 72वाँ वर्ष चल रहा था।

गृहस्थ अवस्था के तीस वर्ष।

छद्मस्थ अवस्था के बारह वर्ष।

तीर्थपति अवस्था के तीस वर्ष।

परमात्मा महावीर का 42वाँ चातुर्मास पावापुरी में था। राजा हस्तिपाल की जीर्णशाला में उनका प्रवास था। वे धर्म परिवार के साथ अखिल विश्व को मैत्री, करुणा, धर्म और शांति का पाठ पढ़ा रहे थे।

गौतम गणधर भगवान की छाया बनकर साथ ही रहते। प्रीति का भाव क्रमशः वर्धमान था। भगवान के चरण-शरण में निर्दोष बाल

की तरह संयम की अठखेलियाँ करने वाले गौतम स्वामी जीवन के आठवें दशक को परिपूर्ण करने की तैयारी में थे।

परमात्मा स्वज्ञान से अच्छी तरह जान रहे थे कि यह मेरा अंतिम चातुर्मास है।

काल भला किसे जीवन-दान देता है! बाल हो या वृद्ध, राजा हो या रंक, अमीर हो या गरीब, विद्वान् हो या मूर्ख, सबको जीवन का अंतिम आलेख मृत्यु के रूप में लिखना ही होता है।

गौतम स्वामी को पता ही नहीं चला और जीवन के तीन दशक पूरे हो गये।

अनुत्तर थे प्रभु के चरण!

अलौकिक था प्रभु का आचरण!

अद्‌भुत था प्रभु का समवसरण!

अनूठा था प्रभु का प्रवचन!

अप्रतिम थी प्रभु की शरण!

और अद्वितीय था प्रभु का दर्शन!

प्रभु की शीतल छाया और स्नेहिल गोद में दिन कब उगता और सूरज कब अस्त होता, गौतम स्वामी को पता ही चल नहीं पाता।

अस्सी वर्ष की उम्र में भी प्रभु के प्रति अद्वितीय था भाव-प्रभाव, योग-संयोग तथा अर्पण-समर्पण।

भगवान केवलज्ञान के दिव्य-दर्पण में अच्छी तरह निहार रहे थे केवलज्ञान के किनारे आकर खड़े इन्द्रभूति गौतम को। 100 में 99 सोपान तय कर चुका! अब वह भला किसकी प्रतीक्षा कर रहा है!

मंजिल को पाने के लिये सीढ़ियाँ छोड़नी पड़ेगी।

किनारे पर जाने के लिये नाव छोड़नी पड़ेगी।

क्यों नहीं बढ़ा लेता है अपने कदम अपनी ओर, अपनी छाँव में। पर इन्द्रभूति गौतम का यह राग भले ही प्रशस्त राग कहें, पर छोड़े बिना वीतराग कैसे बन सकेगा?

स्नेह के महीन तंतु की पकड़ और मोह का हल्का आवरण छेदे-भेदे बिना नहीं मिलेगी सिद्धि की सम्पदा और मुक्ति का उजाला।

शृंखला लोहे की हो या सोने की, आखिर तो बांधती है। पिंजरा लकड़ी का हो या रत्नों का, आखिर पंछी के लिये बंधन ही है।

आश्चर्य, महा-आश्चर्य! संसार के हजारों-हजारों जीवों को युग-युग से रुका केवलज्ञान देने वाले स्वयं गौतम प्रभु वीर प्रभु पर अखण्ड अनुराग के कारण कैवल्य रश्मियों को रोके खड़े थे।

एक कदम मुझे ही उठाना है। इसके साथ ही गौतम के अनुत्तर ज्ञान को ढंकने वाला आवरण सदा-सदा के लिये दूर हो जाना है।

वज्रपात करना पड़ेगा स्नेह शैल को तोड़ने के लिये। जब तक वैराग्य का तीव्र प्रहार नहीं होगा, तब तक स्नेह को यों ही पोषण मिलता रहेगा।

सहज ही थी परमात्मा की जीवंत बोलती करुणा! भले ही व्यवहार में कठोरतम लगे।

सहजतः परमात्मा ने पुकारा- गौतम!

तत्क्षण उपस्थित! गौतम संबोधन सुनकर उनके हृदय-सरोवर में प्रेम के कमल खिल उठे। मन-हंस पुलकित हो उठा।

परमात्मा ने आज्ञा की- गौतम! यहाँ से कुछ दूरी पर एक

गाँव है, जिसमें देवशर्मा नामक एक विप्र रहता है। वह सरलात्मा, सत्यदर्शी आत्मा और प्रतिबोध को प्राप्त होने वाली भव्यात्मा है।

तेरे प्रतिबोध से उसके जीवन में यदि संबोधि की किरण उतरती है तो इससे ज्यादा लाभ का और कौन-सा कार्य होगा।

तुम जाओ और उसे प्रतिबोध देकर आओ।

परमात्मा की आज्ञा में इन्द्रभूति गौतम का मन, उसी में उनकी प्रसन्नता और जीवन का कल्याण! प्रभु आज्ञा प्राप्त कर वे विहार के पथ पर चल पड़े क्योंकि हजारों श्रमणों के होने पर भी प्रभु ने आदेश मुझे फरमाया और किसी संसारी जीव का उद्धार करने तुल्य धर्म-प्रभावना का अनुत्तर योग मेरे हाथों आया, इसका परमानंद गौतम के चित्त को आह्लादित कर रहा था।

जिनाज्ञा शिरोधार्य कर वे अविलम्ब उस गाँव की डगर पर चढ़ गये, जहाँ देवशर्मा ब्राह्मण रहता था। देवशर्मा का उत्कृष्ट उज्ज्वल पुण्य कि गौतम जैसे महान् गणधर उसे सत्य धर्म की सौगात देने सामने से चलकर आये। मानो घर बैठे गंगा आई हो।

पत्नी के मोह में आकंठ डूबे जीव को निर्मोह की राह पर लाना एक कठिन कार्य था, पर जहाँ गौतम स्वामी जैसे कुशल प्रतिबोधक हों, वहाँ मुश्किल की कैसी बात?

गुरु गौतम का अमृतमय संबोधन। जैसे देवशर्मा की आत्मा प्रकंपित हो गई। यह संसार मात्र काजल की कुप्पी है, जिसमें जीव काला हुए बिना नहीं रहता। सत्य की आभा और जीवन का दर्शन गौतम स्वामी के शब्दों से ही नहीं, रोम-रोम से भी प्रस्फुटित हो रहा था। देवशर्मा सहज में ही प्रतिबोध को प्राप्त हो गया। यह परमात्मा की दिव्यदृष्टि थी कि बिना लाभ के वे गौतम स्वामी को संबोधि-

संप्रदान के लिए आदेश नहीं देते।

इन्द्रभूति गौतम ने माना- यह सब प्रभु का अनुग्रह है कि एक जीव का उद्धार हो गया। देवशर्मा ने माना- यह सब गुरु गौतम की ही कृपा है, जो भंवर जाल में गोते लगाते जीव को किश्ती और किनारे के दर्शन करवा दिये।

कृतज्ञ भाव से भरा वह गौतम स्वामी को द्वार तक पहुंचाने आया। महापुरूष गुरु गौतम को आँखों से ओझल होने तक वह निहारता रहा।

उन्हें विदा कर वह घर के अंदर प्रविष्ट हुआ कि माथा दरवाजे से टकराया। दरवाजे से लगी कील माथे में घुस गयी। खून रिसने लगा। इधर सम्यक्त्व के परिणामों से प्रत्यावर्तित होकर मिथ्यादृष्टि गुणठाणे में पहुंच गया। उसी समय पत्नी मोह में मरा और पत्नी के माथे के बालों में जूं के रूप में उत्पन्न हुआ।

55.
महादीप का निर्वाण

'अहिंसा परमो धर्मः' के सर्वोत्कृष्ट उपदेष्टा परमात्मा महावीर की पावन प्रवचन सरिता में जैसे भवोभव का कालुष्य धुल रहा था। पूरी पावापुरी उस पावन दिशा में जा रही थी, जहाँ न कषायों का धुआँ है, न हिंसा की गंदी नालियाँ। स्वच्छ वातावरण और स्वस्थ आचरण के सुंदर वातावरण में एक निर्मल तृप्ति और खुशी हृदय को भाव-विभोर कर रही थी।

समय की सुई लगातार घूम रही थी।

एक गति... एक ही दिशा।

न तेज होना, न धीमा होना, न दिशा बदलना, यह समय की निष्पक्ष न्याय नीति थी। सभी के साथ एक जैसा व्यवहार।

भगवान महावीर को बखूबी बोध था- मेरे जीवन का अंतिम वर्षावास! उन्होंने जीवन को चूंकि पर्व और उत्सव की भांति जीया था, इसलिये उन्हें मृत्यु से कोई भय नहीं था। यह ऐसी मृत्यु थी, जो कभी भी उन्होंने पायी नहीं थी। उनकी मृत्यु थी महानिर्वाण!

अब चातुर्मास के साढ़े तीन माह बीतने के कगार पर खड़े थे। परिनिर्वाण में मात्र सोलह प्रहर ही अवशिष्ट थे। प्रभु अब जगत को ज्यादा से ज्यादा देना चाहते थे, इसलिये उनके दो दिवस पर्यन्त अन्न-जल कुछ भी नहीं लेने का संकल्प था। छट्ठ का तप वे हृदय में धार चुके थे।

सोलह प्रहर की अंतिम देशना परमात्मा फरमा रहे थे। देशना

क्या थी, अमृत की धारा! शब्द क्या थे, सुधारस की मूल्यवान बूंदें।

एकाग्र चित्त और श्रद्धा भाव से द्वादश पर्षदा जिनवाणी की निर्मल धारा में निमज्जन करती हुई अहोभाव, सद्भाव और संतभाव की ओर उन्मुख हो रही थी।

परम शान्ति... पूर्ण शांति... और प्रकृष्ट शान्ति। परमात्मा ने पुण्य के मधुर फल और पाप के कटु फल दृष्टान्त पूर्वक समझाये। अनेक प्रश्न-पुष्पों को समाधान की खुश्बू से महकाया। आज परमात्मा की देशना में असीम करुणा और अनुग्रह व्यक्त हो रहा था। जो उन्होंने पिछले तीस वर्षों में अमृत-दान दिया था, आज उसका निचोड़ प्रस्तुत हो रहा था।

सारी कलाएँ प्रकट हो रही थी। जैसे कृपा निधान वात्सल्य की वर्षा कर रहे थे।

जीवन जीने का ढंग, अपरिग्रह के सिद्धान्त, परीषह जय की विशिष्ट साधना पद्धति, संसार से विमुक्ति, ध्यान का विज्ञान, आत्मा से परमात्मा जैसे सैकड़ों ही विषयों पर परमात्मा की अस्खलित अमृत -भागीरथी प्रवाहित हो रही थी और श्रद्धालु हृदय उसमें अभिस्नात होकर अमल हो रहे थे।

परमात्मा की इस अंतिम दिव्य धर्म पर्षदा में अनेक विशिष्ट व्यक्तित्व तथा काशी-कौशल के नौ लिच्छवी तथा नौ मल्ली के, ये अठारह राजा भी उपस्थित थे।

काल की घड़ी लगातार घूम रही थी।

समय की रेती ज्यों-ज्यों सरक रही थी, त्यों-त्यों परमात्मा के परिनिर्वाण की घड़ियाँ निकट आती जा रही थीं।

इस प्रकार एक तरफ तो परमात्मा के महाप्रयाण की तैयारी,

दूसरी तरफ आकाश में भस्म ग्रह के योग की स्थिति।

परमात्मा दोनों ही स्थितियों में परम तटस्थ थे। उन्हें कोई भय कैसे हो सकता था। महापापकारी जन्म-मरण की परम्परा का समूल छेदन और सिद्धि के सिंहासन पर शाश्वत स्थिति। पावन मुहूर्त्त निकट ही था।

परमात्मा न तो निर्वाण हेतु उत्सुक थे, न मृत्यु से भयभीत थे। वे तो मात्र ज्ञाता-दृष्टा और भोक्ता भाव को आत्मा से देख रहे थे।

जिस प्रकार शक्रेन्द्र जानता था, वैसे ही परमात्मा भी जानते थे कि निर्वाण के समय मेरी राशि पर जो भस्म नामक ग्रह बैठ रहा है, उसका मेरे शासन पर अहितकर असर होगा।

मेरे तीर्थ में पूर्वाग्रह-हठाग्रह, मतभेद, टीका-टिप्पणी, शिथिलाचार का पोषण जैसे कितने ही अनिष्टकर पापों का सेवन चलेगा। शासन की तेजस्विता को कलंकित करने वाले इस भ्रस्म ग्रह का प्रभाव लगभग पच्चीस सौ वर्षों तक रहेगा। ऐसी स्थिति में भी परमात्मा परम सहज और निर्विकार थे।

निर्वाण में चंद पल अवशिष्ट थे कि प्रभु की सन्निधि में शक्रेन्द्र पहुँचे और निवेदन किया- प्रभो! कृपा करके आप अपनी आयुष्य की डोर को पल भर जितना लम्बा कर दो, जिससे आप की दिव्य-दृष्टि से वह निस्तेज हो जाय, अन्यथा उसकी दुष्ट दृष्टि से आपके शासन एवं सिद्धान्त की उन्नति पच्चीस सौ वर्षों तक अवरुद्ध रहेगी। कृपा निधान! आप तो सशक्त और समर्थ हैं। अतः हम अबोध-पामर जीवों के हित के लिये इतनी कृपा अवश्य करें।

परमात्मा तो परमात्मा थे। उनकी पवित्र सन्निधि में मोह-माया

और राग-द्वेष को कोई स्थान नहीं था। अपनी वीतरागता से तनिक भी चलित हुए बिना परम स्वस्थ वाणी में परमात्मा बोले- **'न एयं भूयं, न एयं भव्वं, न एयं भविस्सइ।'**

- हे देवराज! न ऐसा अतीत में कभी हुआ है, न वर्तमान में हो सकता है, न भविष्य में होगा कि कोई तीर्थंकर या चक्रवर्ती हो या वासुदेव और बलदेव हो, वह अपने आयुष्य को पल मात्र के लिये भी बढ़ा सके या फिर घटा सके। आयु प्रकृति और भवितव्यता के वशीभूत है और कुदरती नियमों में किसी का भी हस्तक्षेप असम्भव है।

परमात्मा की निष्पक्ष और न्यायपूर्ण प्रणाली के समक्ष सम्पूर्ण धर्म परिषद अत्यन्त श्रद्धा से छलक उठी- प्रभो! आप धन्य हैं, आपका शासन धन्य है और आपका आत्मानुशासन धन्य है; जहाँ भेदभाव या पक्षपात को लेशमात्र भी स्थान नहीं।

निर्वाण के पल प्रतिक्षण निकट आ रहे थे। परमात्मा आज तक अवढरदानी बनकर बरसे थे तो अब भला उसमें कटौती कैसे हो सकती थी। देखते-देखते कार्तिक वदि अमावस की मध्य रात्रि का प्रारम्भ हो गया। सर्वज्ञ परमात्मा अच्छी तरह जान गये कि अब मेरे निर्वाण का समय अत्यन्त निकट है।

देशना देते-देते भगवान रुक से गये।

समय थक सा गया! वातावरण निस्तब्ध हो गया। धड़कनों की गति बढ़ गयी।

कुछ पल में परमात्मा सुमेरूवत् स्थिर और निष्प्रकंप अवस्था में विराजमान रहे। शैलेषीकरण में परमात्मा सयोगी से अयोगी केवली गुणस्थानक में पहुँच गये। पाँच ह्रस्वाक्षर उच्चारण प्रमाण काल वहाँ

ठहरे और समय के परिपाक के साथ प्रभु निर्वाण को प्राप्त हो गये।

त्रिलोकेश्वर चारों अघाती कर्मों के बंधन से मुक्त होकर सदा-सदा के लिये निरंजन-निराकार, सिद्ध-बुद्ध और मुक्त अवस्था में सिद्ध शिला पर प्रतिष्ठित हो गये।

जीवन उत्सव बना और मृत्यु महोत्सव। तन का विलीनीकरण हुआ और परमात्मा शाश्वत ज्ञान-ज्योति पुंज रूप मोक्ष में पधार गये। निर्वाण की यह घड़ी मानो जन-जन के हृदय पर महाघात की तरह असह्य थी।

कैसे सहें प्रभु का वियोग! किसे कहें प्रभु की विरह वेदना! सिसकियाँ..... रूदन..... अश्रु भीनी श्रद्धांजलि की पावन गंगा प्रवाहित हो चली।

'गए से भावुज्जोयं, दव्वुजोयं करिस्सामो।'

भाव दीप बुझा, द्रव्य दीप जले।

केवलज्ञान दीप का विच्छेद होते ही महातम फैल गया, उसे दूर करने के लिये मिट्टी के दीये जलाये गये।

पावापुरी की पावन धरा परमात्मा के निर्वाण पर्व का स्पर्श पाकर महातीर्थ बन गयी। कार्तिक कृष्णा अमावस्या महावीर के मोक्ष कल्याणक के रूप धर्म-पर्व बन गयी।

दहलीज-दहलीज पर मिट्टी के जलते दीये एक ही संदेश प्रसारित कर रहे थे- जीओ तो ऐसे कि मृत्यु भी महक उठे। मरो तो ऐसे कि जीना सार्थक हो जाये।

'तमसो मा ज्योतिर्गमय' पावन उक्ति को दोहरा रही दीप-बाती की अस्खलित ज्योति मानो अन्तर्ज्योति की प्रेरणा का पाथेय बांट रही थी।

56.
महाव्यथा की महाकथा

इन्द्रभूति गौतम देवशर्मा को प्रतिबोध देकर पुनः पावापुरी की दिशा में प्रस्थान कर चुके थे। परमात्मा के बिना एक दिन तो क्या एक पल भी रहना उन्हें स्वीकार्य न था।

पावापुरी की ओर विहार करने के लिये वे गुणाया नामक ग्राम में आकर आज ठहरे थे और कल सुबह विहार करके परमात्मा के दर्शन पाने का आनंद उनके हृदय को प्रफुल्लित कर रहा था।

वैसे भी उनका मन आज आनंद से छलक रहा था क्योंकि परमात्मा की आज्ञा के पालन से बढ़कर उनके लिये न कोई पर्व था, न कोई उत्सव!

रात्रि का अंतिम प्रहर...!

आत्म ध्यान में मस्त इन्द्रभूति गौतम!

तरु तले खड़े मस्त अप्रमत्त योगीराज!

आत्मा के धरातल पर खड़े इन्द्रभूति चेतना के संगीत में रमने का प्रयास कर रहे थे, पर सफल नहीं हो पा रहे थे। जितना ज्यादा जुड़ते, उतने ही ज्यादा बेचैन होते।

ओह! यह बेचैनी कैसी? ध्यान में चंचलता का यह विक्षेप कैसा? अक्षुब्ध मनोमस्तिष्क में यह महाक्षोभ कैसा?

इतने में उनके कानों से एक मर्मभेदी संवाद आ टकराया। नभ तल में विचरण कर रहे देव विमान और देव विमान में विराजमान देवों का परस्पर चल रहा वार्तालाप- अरे! चलो, जल्दी

चलो! परमात्मा महावीर का निर्वाण हो गया है।

गौतम स्वामी को जैसे अपने कानों पर विश्वास ही नहीं हुआ। दूसरे ही पल दूसरे दो देवों का चल रहा संवाद सुनाई दिया- अरे! सारे जगत् के उद्धारक परमात्मा महावीर परिनिर्वाण - परम निर्वाण को उपलब्ध हुए हैं। कहीं विलम्ब न हो जाये निर्वाण के महोत्सव में सम्मिलित होने में।

सुनकर गौतम स्वामी को लगा, जैसे किसी ने दिल के कोमल फूल को पत्थर से कुचल दिया हो।

पल भर के लिये तो जैसे वे चेतना शून्य से हो गये। किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो बेहोश-बेभान हो गये।

जब होश में आये तो छोटे बालक की तरह कल्पान्त क्रंदन करने लगे- अरे प्रभो! आपने यह क्या किया? मेरे जीवन! मुझे आपका ही तो सहारा था।

मैं आपका आलम्बन लेकर ही तो भव-विराम की यात्रा में आगे बढ़ रहा था, पर मेरी स्थिति बीच मंझधार में फंसे नाविक की जैसी होती है, वैसी हो गयी। हे प्रभो! बिन माली के इस उपवन का क्या होगा?

बिना सेनापति के सेना की जो हालत युद्धभूमि में होती है, वही हालत मेरी है।

हृदय में अथाह शोक था, आँखें अनराधार बरस रही थी, और चित्त में अपार पीड़ा थी; पर इन्द्रभूति की दर्द भरी पुकार सुनने वाला कोई नहीं था।

एक छोटा सा बाल माँ का शिरच्छत्र उठ जाने पर जिस प्रकार विलाप करता है, उससे भी हजार गुणा बढ़कर गुरु गौतम

स्वामी विलाप कर रहे थे।

अनन्य राग दशा में डूबे वे वीतराग की वीतरागता भूलकर उन्हें उपालंभ दे रहे थे-

प्रभो! आपने तो दुनिया की भी रीत नहीं निभाई।

दुनिया वाले अंतिम समय में दूर रहे स्नेहीजनों, परिजनों और संबंधीजनों को निकट बुलाते हैं पर आपने तो जान-बूझकर मुझे दूर किया।

प्रभो! मैं न तो आपका हाथ पकड़कर अपने साथ ले चलने की जिद्द करता, न मैं आपसे केवलज्ञान देने का हठाग्रह करता।

प्रभो! आपसे ही तो मेरी दुनिया थी।

जहाँ आप, वहाँ मैं।

आप से ही तो मेरे नयनों में आनंद, हृदय में चैन और जीवन में मंगल था।

आप मुझे गौतम-गौतम कहकर पुकारते और मेरे अंतर में खुशियों के हजार-हजार दीप एक साथ जल जाते।

मुझ पर अपनी प्रेमधारा बरसाने वाले, मेरे जीवन-उपवन को हराभरा बनाने वाले प्रभु! मुझे तो आप में ही विश्वास और आश्वास था। मेरी प्रीति और भक्ति का आधार एकमात्र आप थे। परंतु आप ने इस बाल के साथ धोखा किया मेरे प्रभु! मैंने जीवन भर जिनके चरणों में सहारा खोजा, वे प्रभु ही पल भर में बेसहारा कर गये।

प्रभो! आपने इतना भी नहीं सोचा कि आपकी गोद में जिसकी दुनिया है, आपके दर्शन से जिसकी खुशियाँ हैं, वह गौतम आपके बिना कैसे जीयेगा?

प्रभु की विरह-वेदना में इन्द्रभूति गौतम बालक की भांति

बिलख रहे थे।

प्रकृति भी मूक-मौन भाव से गौतम के सुर में सुर मिला रही थी। जैसे जमीन, आकाश, चांद-सितारे, पेड़-पौधे, वन-पवन-उपवन, पशु-पक्षी, पूरा वायुमण्डल गमगीन हो गया था। करुणावत्सल के वियोग में फूल मुरझा गये, हंस तैरना भूल गये, चिड़ियाँ चहकना भूल गयीं, कोयल गाना भूल गयी और चारों ओर घोर उदासी व्याप्त हो गयी।

अमावस्या की स्याह रात्रि गौतम के जीवन में घनघोर अंधियारा भर गयी।

गौतम को कुछ नहीं सूझ रहा कि कहाँ जायें और क्या करें!

57.
आँसू में धुला मोह का मैल

इन्द्रभूति गौतम के अन्तर की लगन इतनी गजब की थी कि तभी तो अस्सी वर्ष के बुढ़ापे में भी आठ वर्ष के बाल की तरह रूदन कर रहे थे।

मेरे भगवान!

इस रंक को एक आप पर ही तो विश्वास था पर आप इस रंक के विश्वास को भी तोड़ गये।

मैंने तो माना था कि प्रभु मेरे हैं। उनकी कृपा-छतरी के नीचे मुझे सदा ही रहना है, फिर मुझे धूप और बरसात का डर कैसा?

निर्मोही भगवान्! आपको भी इस गरीब पर दया न आयी! मेरी लगन आपसे छिपी नहीं थी, फिर भी आपने अपने से दूर करके जैसे अपनी उपेक्षा की मुहर लगा दी।

प्रेम न था आपको, तो भले न था, भले न करते पर कम से कम दूर तो न करते। गौतम स्वामी के आक्रंदन से जैसे सारी दिशाएँ मूक रूदन कर रही थीं। प्रकृति में सुवास का आनंद नहीं, सिसकियों की पीड़ा थी।

हे प्रभो! मेरी शंकाओं का समाधान कौन करेगा? कौन मेरे प्रश्नों का उत्तर देगा? कौन मेरे मस्तक पर अनुग्रह भरा वरदहस्त रखेगा? मुझे गौतम स्वामी के सम्बोधन से पुकारने वाले हजारों हैं पर मुझे गौतम-गौतम कहकर कौन पुकारेगा! प्रभो! आप आखिर इतने कठोर कैसे बने?

मेरे चरणों में सिर रखने वाले बहुत हैं, पर मेरे लिये तो भगवन् एकमात्र आपकी ही गोद थी।

सारी दिशाएँ जैसे बहरी हो गयी थीं। गौतम को दूर-दूर तक निराशा का अंधेरा ही अंधेरा दिखायी दे रहा था।

बस पीड़ा का मंजर, खुशी कहाँ से लाऊँ!
आशा पर टूटा कहर, ज्योति कैसे जलाऊँ!
श्मशान है ये दुनिया, कोई सुनता नहीं किसी की,
मरघट की बस्ती में, अंतर्व्यथा किसे सुनाऊँ!
चीखती है जिन्दगी, सन्नाटों की परछाई!
किसी ने भी पुकारा नहीं, आवाज कहाँ से आई!
मन का मीत नहीं यहाँ, कैसे साज सजाऊँ!
परायों की दुनिया में, किसको दर्द बताऊँ!

अनन्त शून्य में खोये इन्द्रभूति का चित्त कहीं भी समाहित नहीं हो पा रहा था।

ओह! यह कैसी करुण स्थिति कि हजारों जीवों का उद्धार, कल्याण और हित करने वाला महापुरुष आज स्वयं ऐसे भंवर जाल में अटक गया है, जहाँ से उबरने का कोई रास्ता ही नजर नहीं आ रहा। ओह! आज एक प्रकाश स्तम्भ स्वयं अंधेरे में भटक गया! गुलाब गंधहीन हो गये और गुलदस्ते जार-जार!

वीर... वीर... की ध्वनि उनके अणु-अणु के अनुराग को व्यक्त कर रही थी।

पर एकाकी... सर्वथा अकेले!

उनका शिरच्छत्र तो छिन ही गया, पर पास में सांत्वना देने वाले कोई साधु-साध्वी भी नहीं थे।

अरे! आज महापुरुष की आँखों का तेज कहाँ गया!

अरे! आज भव्य पुरुष के होंठों का स्मित कहाँ गया!

अरे! आज दिव्य पुरुष की देह का सौंदर्य कहाँ गया!

मुझे जब इतना लगाव था तब आपको भी थोड़ा बहुत तो रहा ही होगा? क्या आपको मेरी जुदाई का कोई गम नहीं... मेरी याद-फरियाद भी नहीं।

ओहो! भगवन् तो निर्मोही थे, मोह मुझ में है।

प्रभु तो निष्कामी थे, कामना मुझ में है।

परमात्मा तो वीतरागी थे, राग मुझ में है।

वीतराग को भला कैसा स्नेह, लगाव और ममत्व! वे सम्पूर्ण वैरागी... सम्पूर्ण योगी... सम्पूर्ण त्यागी! जब अपने शरीर पर भी ममत्व नहीं तो मुझ पर कैसी आसक्ति?

तब तो मेरा प्रेम एक तरफ का हुआ? और कोई भी गाड़ी एक पहिये पर नहीं चलती! मैं मानता रहा- प्रभु मेरे हैं और प्रभु मानते रहे, कोई किसी का नहीं, गौतम भी नहीं।

अब जैसे मन ठहर सा गया...! वेदना-संवेदना का स्वर कम हुआ तो भीतर की मीठी पुकार सुनाई दी- गौतम! तूं कितना ही प्रभु को चाह ले, मना ले, पर प्रभु की एक धड़कन... एक श्वास में भी तेरी आसक्ति-प्रेम नहीं पा सकेगा। वे वैरागी थे, संपूर्ण वैरागी।

विचारों के प्रवाह को चिन्तन की दिशा मिली तो जैसे जीवन की राहें महक उठीं।

नहीं... नहीं परमात्मा तो संसार की माँ हैं, वे कभी भी कठोर नहीं हो सकते। मुझे अन्त समय में दूर किया तो उसमें भी मेरे कल्याण की ही कामना रही होगी। फिर उन्हें बाहर ढूंढ़ने के बजाय

भीतर खोजूं, तो मेरे महावीर... हृदय के मीत मिले बिना नहीं रहेंगे। वे हैं मेरे भीतर, मेरे पास, मेरे हृदय के आसन पर।

भगवान तो विश्वास के अखूट खजाना थे। जो उन पर श्वास की हद तक विश्वास करता है, वह कभी भी दु:खी, दीन, हीन और अनाथ नहीं हो सकता।

उन्हें याद आया- **गोयम! सच्चं समभिजाणहि!** स्वयं ही सत्य की खोज करो। दूसरों की बैशाखी के सहारे सुमेरु की यात्रा नहीं होती।

अब सत्य समझ में आ गया! जीवन का दर्शन खिल गया।

ओह! मुझे केवलज्ञान नहीं हुआ तो इसमें दोष प्रभुवीर का नहीं, मेरी निपट अज्ञानता और मोह का ही दोष है। अज्ञान और मोह के कवच को भेदे बिना केवलज्ञान का खजाना कैसे मिल सकता है!

अब तो धारा अन्तर्मुखी हो रही थी और बढ़ती-चढ़ती भावधारा में इन्द्रभूति गौतम ने सोचा- मेरे मोह के आवरण के छेदन के लिये ही प्रभु ने मुझे खुद से दूर किया, ताकि सत्य की राह मिल सके।

रेत को पीलने से तेल नहीं मिलता...

पानी को मथने से मक्खन नहीं मिलता।

वैसे ही राग भले ही वीतराग से हो, पर राग को तोड़े बिना कैवल्य नहीं मिलता। मुझे दूर करके मेरे चिन्तन का पथ प्रशस्त किया- गौतम! राग-द्वेष छोड़े बिना सिद्धि का अमृत नहीं मिल सकता।

प्रभो! मुझे माफ करना, जो निर्दोष के माथे दोष का टीका लगाकर मैंने महादोष का महापाप किया। क्षमाश्रमण! मेरे अपराध को

क्षमा करना।

अब बात बराबर समझ में आ गयी। देखते-देखते अमृत के सागर में तैरते हुए गौतम स्वामी किनारे से मंजिल पर पहुँच गये। एक छलांग लगी और अंधेरे से प्रकाश में आ गये। आत्म निरीक्षण करते हुए इन्द्रभूति गौतम केवली बन गये।

जैसे ज्योति में ज्योति मिले, वैसे प्रभु निर्वाण की ज्योति में गणधर गौतम के अन्तर में कैवल्य-ज्ञान की ज्योति जल गयी। कार्तिक शुक्ल एकम् का प्रथम प्रहर केवलज्ञान की आभा में नहा उठा। जिस प्रकार सूर्योदय के समय पूर्व दिशा पवित्र लालिमा से परिपूर्ण हो जाती है, जिस प्रकार रात्रि की कालिमा धुल जाती है, उसी प्रकार गौतम स्वामी की आत्मा में कैवल्य-दीपक के प्रकाश में खिल उठी। अनंत-अनंत जन्मों के कर्मों की कालिमा पल मात्र में धुल गई। इस प्रकार गौतम स्वामी सर्वज्ञ, सर्वदर्शी और लोकालोक प्रकाशक बन गये।

वि.सं. के आरंभ से ठीक 470वें वर्ष पहले की यह दिव्य घटना हजारों वर्षों के बाद भी समर्पण का अमिट शिलालेख बन कर प्रेरणा का प्रकाश बांट रही है।

गुणाया की पावन भूमि आज भी श्रमण श्रेष्ठ इन्द्रभूति गौतम की गौरवगाथा गा रही है।

58.
ज्योति में ज्योति मिली

एक अनुत्तर प्रसंग।

लौकिक धरातल पर अलौकिक घटनाक्रम जहाँ हृदय में आनन्द की वर्षा करने वाला था, वही जीवन में प्रेरणा की सुगंध देने वाला भी था।

पुत्र प्राप्ति, राज्य-प्राप्ति, चक्रवर्ती पद-प्राप्ति आदि सांसारिक उपलब्धियों के सम्मुख यह दिव्य ज्ञान की प्राप्ति का महोत्सव अपने आपमें विशिष्ट और महिमा मण्डित था।

विलाप करते-करते अश्रुओं की जो पावन जाह्नवी प्रवाहित हुई, उसमें मोह और अज्ञान की सारी मलिनता बह गयी।

पीछे रहा मात्र अक्षय आनंद कोष! अनुत्तर ज्ञान भण्डार! अलौकिक अमृत खजाना।

आत्मा स्फटिक की भांति स्वच्छ और पारदर्शी बन गयी।

छद्मस्थ गौतम सर्वज्ञ बन गये।

आत्मा पर लगे राग के धूलिकण हट गये।

एक समर्थ गुरु के समर्थ शिष्य!

एक ज्ञानी गुरु के ज्ञानी शिष्य!

महोत्सव मनाया गया देवों द्वारा!

देवदुंदुभि का निनाद हुआ।

पंचवर्णी पुष्पों की वर्षा से प्रकृति हरी-भरी हो गयी। सुगंधित नीर ने वायु को सुगंध से भर दिया।

देवों ने ही नहीं, देवेन्द्रों ने ही नहीं, देवलोक में ही नहीं, इस बधाई के प्रसंग का अभिनंदन मानव लोक में भी रचा गया।

श्रावक-संघ में आनंद की लहर दौड़ गयी।

क्या गौतम स्वामी सर्वज्ञ बन गये?

एक दीप बुझा तो दूसरा दीप जला।

श्रमण-श्रमणी मण्डल भी हर्षातिरेक में हृदय में निर्विकार आनंद से भर गये।

सर्वज्ञ गौतम गणधर!

भगवान गौतम गणधर!

सर्वद्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव आत्मा में हस्तामलकवत् प्रतिबिम्बित हो गये। न मोह का आवरण रहा, न अज्ञानता का माया जाल।

गौतम स्वामी का विचरण पूर्ववत् था। परिवर्तन मात्र देशना में था।

पहले कहते थे- मैंने परमात्मा से जाना, पहचाना, सुना और समझा है।

अब कहते हैं- मैं केवलज्ञान से ऐसा कहता हूँ। मैंने जाना, माना और पहचाना है।

बैसाखी हट गयी, सर्वज्ञ गौतम परिपूर्ण-सम्पूर्ण स्वावलम्बी हो गये।

उपदेश में कभी करुणा का बोध तो कभी जयणा का ज्ञान। कभी नम्रता-लघुता का संदेश तो कभी कषाय-मुक्ति और आत्म-शुद्धि का विज्ञान। ज्ञान की रश्मियाँ जन-जन में बांटने लगे।

यद्यपि गौतम स्वामी लब्धि निधान थे, पर अब उन लब्धियों

का प्रयोग नहीं था। सर्वज्ञावस्था से पूर्व गौतम स्वामी ने लब्धि का उपयोग यदा-कदा किया था, परन्तु उसमें नाम-मान की, यशो-सम्मान और साधन-संसाधन की तुच्छ कामना नहीं, अपितु जनहित, जग-कल्याण, आत्मोद्धार, शान्ति- विस्तार और स्वभाव रमणता की ही उत्तम प्रशस्त भावनाएँ थीं, फिर भी इसका दूसरा पहलू यह भी है कि लब्धियों का उपयोग प्रमाद में ही सम्भव है।

अब तो गौतम प्रभु अप्रमत्त विहारी थे। तेरहवें सयोगी केवली गुणस्थानक में थे। अतः वहाँ आत्म-तत्त्व के सिवाय कोई काम ही नहीं था। लब्धियों का प्रयोग करना दूर की बात रही।

गौतम स्वामी की...

गृहस्थावस्था पचास वर्ष की।

छद्मस्थावस्था तीस वर्ष की!

सयोगी केवली अवस्था बारह वर्ष की!

काल का चक्र लगातार चक्कर लगाता है। इस काल के अमिट प्रभाव से आज तक कौन अप्रभावित रह पाया है! राज तीर्थंकर का हो या चक्रवर्ती का। देवेन्द्र का या नरेन्द्र का अथवा सामान्य मानव का। मृत्यु का अंतिम शिलालेख अंकित करना प्राणी मात्र की अवश्यंभावी विवशता है, नियति है।

गौतम प्रभु प्रतिबोध का प्रसाद देते रहे।

प्रसाद पाकर श्रद्धालु प्रमुदित होते रहे।

प्रमोद भावना में कर्म विनष्ट होते रहे।

गौतम प्रभु अपनी उम्र से परिचित थे। जीवन के 91 पृष्ठ पढ़े जा चुके थे। 92वें पृष्ठ का भी बहुत ही कम अंश अवशिष्ट था।

जाना अपने निर्वाण की परिणति को।

प्रभु राजगृही के वैभारगिरि पर्वत पर पधारे।

काया का पूरा कस-रस लेते हुए मृत्यु को महोत्सव बनाते हुए एक मास का अनशन स्वीकार कर लिया। अनशन के अन्त में समत्वी महापुरुष गणधर गौतम स्वामी महानिर्वाण को प्राप्त हो गये। उस स्थिति में पहुँच गये, जिसका अन्त नहीं। उस सिद्ध क्षेत्र में पहुँच गये, जहाँ से वापस आना नहीं।

आत्म ज्योति भगवान महावीर तथा अनन्त आत्माओं की ज्योति में विलीन हो गयी।

राजगृही नगर का गुणशील उद्यान, जो वर्तमान में गुणाया जी तीर्थ के रूप में प्रसिद्ध है, वहाँ अनन्त लब्धिनिधान गुरु गौतम स्वामी के अंतिम संस्कार की स्मृति रूप में निर्मित जल मंदिर पावन भव्य धर्मधाम बन गया।

जिस अनन्त लब्धिनिधान, अनन्य गुरुभक्त, परम विनयी, परम आज्ञाकारी, परम योगी, परम त्यागी, परम पुरूष भगवान् गौतम स्वामी के नाम स्मरण से क्षणमात्र में ही सारी विपदाएं टल जाती हैं, समस्त संपदाएं दास बन जाती हैं, उस अनुत्तर योगी के चरणों में अनंतशः प्रणाम!

विपुल साहित्य सर्जक

मुनि श्री मनितप्रभसागरजी म.सा.

द्वारा विवेचित-लिखित साहित्य

ऐतिहासिक जीवन साहित्य-

1. **क्षमाश्रमण महावीर** - महावीर वीर प्रभु की सम्पूर्ण जीवन-साधना का सुन्दर तराना।
2. **गणधर गौतम स्वामी**- गौतम-प्रभु की अखिल जीवनी का दिव्य दिग्दर्शन।
3. **महावैरागी जम्बू स्वामी** - चरम केवली श्री जम्बूस्वामी की महावैराग्य प्रदायिनी जीवनी का सम्पूर्ण मनभावन दर्शन।

4-6. **सत्य का अमिट सौन्दर्य, शील के अमिट शिलालेख, समय के अमिट हस्ताक्षर** - सोलह सतियों की प्रेरणास्पद जीवन-गाथा को प्रस्तुत करने वाले तीन रंगीन ग्रन्थ।

7-8. **खुश्बू कहानियों की** - ऐतिहासिक काल में हुए महापुरुषों से संबद्ध 31 कथाएँ।

9-10. **प्रिय कहानियाँ-मधुर कहानियाँ** - आगमों में कथित कथाओं का औपन्यासिक शैली में प्रस्तुतीकरण।

11. **दस महाश्रावक** - उपासकदशांग सूत्र में वर्णित आनंद आदि दस महाश्रावकों का रोचक शैली में वर्णन।

खरतरगच्छीय साहित्य-

12. **साधना का ऐश्वर्य, चेतना का माधुर्य** - 75-80 महाप्रभावशाली मुनीश्वरों की 300 से अधिक घटनाओं का हृदयस्पर्शी उल्लेख।
13. **दादावाड़ी दर्शनम्** - दक्षिणी भारत की दादावाड़ियों का सचित्र वर्णन।
14. **खरतरगच्छ गौरव गाथा**- 30 से अधिक आचार्यों का जीवन-परिचय
15. **श्री सिद्धाचल सौरभ** - शत्रुंजय गिरिराज का अद्‌भुत विवेचन

प्रश्नोत्तर साहित्य-

16-23. **प्यासा कण्ठ मीठा पानी** - प्रश्नोत्तर के आठ खण्डों में सैकड़ों विषयों से संबद्ध 60000 श्लोक परिमाण पठनीय सामग्री।

24. **सौ पहेलियाँ** - रोचक-सुन्दर विविध शैली में पहेलियाँ।

25-26. **जैन जीवन शैली (हिन्दी-रंगीन एवं गुजराती)** - रंगीन दो भागों में विभक्त यह ग्रन्थ 76 टॉपिक के माध्यम से सम्पूर्ण जैन जीवन का मार्गदर्शक है।

तत्वज्ञान साहित्य-

27. **जीव विचार प्रकरण**- गाथा, शब्दार्थ, भावार्थ एवं अनुवाद से युक्त ग्रन्थ।
28. **जीव विचार प्रश्नोत्तरी** - 1000 से अधिक प्रश्नोत्तरों में ग्रथित ग्रंथ।
29. **दण्डक प्रकरण विवेचन - प्रश्नोत्तर**- 24 दण्डकों की विवेचना एवं 2300 से अधिक प्रश्नोत्तर।
30. **प्रत्याख्यान भाष्य** - पच्चक्खाण भाष्य की विशिष्ट विवेचना।
31. **प्रत्याख्यान भाष्य प्रश्नोत्तरी**- प्रत्याख्यान से संबद्ध 600 से अधिक प्रश्नोत्तर।
32. **प्रथम कर्मग्रंथ** - आठ कर्मों की सरल व्याख्या।
33. **प्रथम कर्मग्रंथ प्रश्नोत्तरी** - आठ कर्म पर 1500 से अधिक प्रश्नोत्तर।

शास्त्र साहित्य-

34-35. **वीतराग स्तोत्र** - श्री हेमचन्द्राचार्य लिखित वीतराग स्तोत्र की सुन्दर व्याख्या के दो विभाग।
36. **श्रमण चिन्तन** - दशवैकालिक प्रथम चूलिका विवेचन एवं संयम संबंधी विविध आलेख।
37. **वैराग्य शतक** - वैराग्य पर आधारित शतक का संक्षिप्त भावार्थ।
38-39. **श्री शोभनमुनि स्तुति चतुर्विंशतिका** - शब्दार्थ, भावार्थ, अन्वय एवं रोचक विवेचन।

चिन्तन-

40. **श्री गुरु गौतम समरिये**- लब्धिनिधान के अद्भुत गुणों पर 46 मधुर निबंध।
41. **ताक रही निगाहें, परिवर्तन की राहें** - सामाजिक कुरीतियों पर कुठाराघात करना चिन्तनात्मक तेजस्वी ग्रन्थ।
42. **सात रंग के सपने** - श्रावक जीवन की सुन्दर समझ देने वाले प्रेरणादायक 76 आलेखों का प्रस्तुतीकरण।
43-44. **विचार विरासत-विचार वैभव** - तीर्थ, तीर्थंकर, चातुर्मास आदि बीसों विषयों पर लिखित आलेखों का संग्रह।
45-46. **जीएँ तो ऐसे जीएँ!, आओ! तराशे जिन्दगी** - जीवन के सुहाना को

सफल बनाने वाले रसप्रद शताधिक आलेख।

विविध पॉकेट बुक (रंगीन)-

47. **मृत्यु बने जीवन का महोत्सव** - हर पल याद रखने योग्य 'मृत्यु' का विवेचन।
48. **मंत्र नवकार करे भवपार** - सर्वशिरोमणि मंत्र की महिमा।
49. **अप्पा सो परमप्पा**- आत्मतत्व की समझ देने वाला अप्रतिम उपहार।
50-51. **अन्तर्नाद-अन्तर्यात्रा** - क्षमा, सेवा आदि पर भावनात्मक चिन्तन।
52-58. क्षमापना, मिच्छामि दुक्कडम्, मित्ती मे सव्वभूएसु, क्षमायाचना, मिथ्या दुष्कृतम्, खमतखामणा, खामेमि सव्व जीवे, खमाऊँ सा, खमियव्वं खमावियव्वं-क्षमा का विवेचन (अनुपलब्ध)।
59. **जैन धर्म में जल का विज्ञान** - जल के महत्व को बताने वाली पुस्तक।

मैनेजमेंट सीरिज (हिन्दी-रंगीन)-

60. **लाइफ मैनेजमेंट (हिन्दी-अंग्रेजी)** - जीवन-निखार का निर्देश देने वाला वरदान।
61. **माइण्ड मैनेजमेंट** - मन को प्रशिक्षण देने वाले सूत्रों का संगम।
62. **रीलिजन मैनेजमेंट** - क्षमा, दया, अहिंसा आदि के व्यावहारिक अर्थों की अभिव्यक्ति।
63. **बिहैवियर मैनेजमेंट** - व्यवहार की समझ का अनमोल साधन।
64. **फूड मैनेजमेंट** - आहार को उपहार बनाने वाली सर्चलाईट।
65. **मनी मैनेजमेंट** - धन के प्रति विशुद्ध नजरिया देने वाला नजराना।
66. **इन्वायर्नमेंट मैनेजमेंट**- पर्यावरण संरक्षण के प्रति जागरण की सुनहरी किरण।

ज्ञान वाटिका साहित्य-

67-74. बालकों के जीवन को संवारने वाली आठ खण्डों में विभक्त रंगीन **ज्ञान-वाटिका।**

काव्य साहित्य-

75. **काव्यामृतम्** - प्रतिक्रमण में बोलने योग्य स्तवन, स्तुति एवं सज्झायों की प्रस्तुति सह विविध वंदनावलियाँ।
76. **करुणानिधान** - जिनमंदिर में बोलने योग्य स्तुति, थुई, चैत्यवंदन और स्तवनों की भावपूर्ण प्रस्तुति।

श्रावक जीवन साहित्य-

77. **श्रावकाचार**- बारह व्रतों एवं चौदह नियमों का धाराप्रवाह विवेचन।
78. **भव आलोचना** - श्रावकों के लिए पाप मुक्ति का अमोघ उपाय।
79. **श्रमण आलोचना** - निरतिचार श्रमण जीवन का सच्चा साथी।
80. **जीवन का दर्पण कर्त्तव्य का प्रतिबिम्ब** - श्रावक जीवन के विविध कर्त्तव्यों का सूचना-पत्र।
81. **सामायिक** - सुषुप्त आत्मा में जागृति का शंखनाद।
82. **रात्रि भोजन : बंधन और पतन** - रात्रि भोजन को विविध संदर्भों में त्याज्य सिद्ध करने वाली पुस्तक।

शोध प्रबन्ध-

83-90. **पंचलिंगी प्रकरण** पर आधारिक आठ खण्ड जिनमें सम्यग्दर्शन की विस्तृत व्याख्या, उसके पाँच लिंगों का विशिष्ट विवेचन एवं आस्तिक्य लिंग के अंतर्गत नवतत्वों की शास्त्रीय सिद्धि। इस शोध प्रबंध में 400 ग्रंथों का उपयोग हुआ है।

न्याय दर्शन साहित्य-

91. **तर्क संग्रह** - मूल एवं उसकी न्यायबोधिनी व पदकृत्य, दोनों टीकाओं का सुगम-विस्तृत हिन्दी विवेचन।

प्रवचन साहित्य-

92-94. चार भागों में विभक्त पावन प्रवचनों का संग्रह।

संयोजन-संकलन-

95. **सिद्धाचल तारणहार रे** - शत्रुंजय तीर्थ के पाँच चैत्यवंदन।
96. **जय सिद्धाचल** - अनुपलब्ध
97. **मारा व्हाला प्रभु** - प्राचीन-अर्वाचीन भक्ति गीत संग्रह।
98. **जैन तत्वप्रभा** - जैन तत्व के कंठस्थ हेतु लघुपुस्तक।
99. **सुप्रभातम्** - (प्रथम भाग) गुरुवंदन, सामायिक व मंदिर विधि। अनुपलब्ध
100. **सुप्रभातम्** - (द्वितीय भाग)
101. **श्रावक पौषध विधि** - पौषध विधि का सरल स्वरूप।
102. **दो प्रतिक्रमण सूत्र** - दो प्रतिक्रमण सूत्रों का अंग्रेजी रूपान्तरण।
103. **दादा गुरूदेव की पूजा एवं स्तवन**